द पुस्तक-मन्दिर का तेरहवाँ पुष्प

पाकिस्तान का प्रश्न

लेखक

मोती बाबू एम० ए०, एल एल बी०

प्रकाशक

विनोद पुस्तक मन्दिर

आगरा, इलाहाबाद

समर्पण

परतन्त्रता की शृंखलाओं में बद्ध उस

मातृ-भूमि

को जो अपने पुत्रों की ओर आशा भरी दृष्टि
से देख रही है एक अकिंचन
की अकिंचन भेंट

—लेखक

मे हिन्दू-मुस्लिम कटुता को देखा गया है। हो सकता है कि पुस्तक के आकार के ध्यान से यह भाग कुछ बड़ा प्रतीत हो किन्तु हम कह सकते हैं कि यह विस्तार आवश्यक नहीं।

इस पुस्तक मे ऐसी बहुत थोड़ी चीजे हैं जिन्हें मैं अपनी कह सकूं। प्रायः पुस्तकों तथा पत्र-पत्रिकाओ से सामग्री लेकर समन्वित रूपमे पाठकों के समक्ष रख दी गई है। पाठको को इससे विश्लेषणात्मक परिचय प्राप्त कर स्वतंत्र चिन्तन का अवकाश मिल जायगा ऐसी मेरी धारणा है।

उन सब महानुभावों को धन्यवाद है जिनकी रचनाओं की सहायता लेकर यह पुस्तक तैयार की जा सकी है।

यह पुस्तक दोषोंसे रहित नहीं है, यह मैं नहीं कह सकता। किन्तु यदि पाठको को इससे पाकिस्तान सम्बन्धी विचार सुलझाने मे तथा स्वतंत्र चिन्तन करने में कुछ सहायता मिलती है तो मैं अपना प्रयत्न सफल मानूँगा।

१-१०-४५ मोतीबाबू

इतिहास के आलोक में

यह बिल्कुल स्पष्ट है कि संसार में घटनाएँ अकारण नहीं घटती हैं—यह दूसरी बात है कि घटना विशेष की पृष्ठभूमि से अपरिचित होने के कारण हम उसे अचानक घटना कह कर पुकारें। संसार की सारी वस्तुएँ एक दूसरे से किसी न किसी रूप में सम्बद्ध हैं और एक का विकास अथवा ह्रास दूसरी के विकास अथवा ह्रास का कारण बनता है। मनुष्य भी संसार की इतर वस्तुओं से अस्पृष्ट नहीं है। संसार में जो घटनाएँ घटित होती हैं मनुष्य उनसे प्रभावित होता है और मनुष्य की उपस्थिति घटनाओं पर अपना प्रभाव छोड़ती है। मनुष्य बहुत हद तक अपने वातावरण की कृति है और वातावरण मनुष्य की। मनुष्य जो कुछ करता है वह उसकी शक्ति और विचारधारा पर निर्भर है। उसकी कार्य करने की शक्ति चारों ओर की परिस्थितियों से सीमित होती है और उसकी विचार-धारा कुछ परम्परागत संस्कारों और कुछ संसार में रहकर एकत्रित किए हुए आदर्शों तथा भावों का परिणाम होती है। इसीलिए मनुष्य की किसी कृति-विशेष अथवा घटना विशेष को ठीक से समझने के लिए उसकी पृष्ठभूमि के ज्ञान की आवश्यकता होती है। जब मुस्लिम लीग पाकिस्तान की माँग पेश करती है तो उसको समझने के लिए हमें उस माँग के पीछे की ओर दृष्टि डालना आवश्यक हो जाता है। आज जो हिन्दू-मुस्लिम समस्या इतनी विकट हो गई है कि

हिन्दुओं और मुसलमानों का पारस्परिक सम्बन्ध-विच्छेद ही एकता तथा शान्ति का एकमात्र साधन बतलाया जाता है तो इसके पीछे भी अपना इतिहास है। हिन्दू-मुस्लिम विरोध अनादि काल से चली आने वाली वस्तु नहीं है। उसका भी अपना प्रारम्भ और विकास है। जो लोग यह कहते हैं कि हिन्दू और मुसलमानों के धर्म एक दूसरे के नितान्त विरोधी हैं, उनके आचार-विचार, रहन-सहन, वेष भूषा, सभ्यता और संस्कृति, आदर्श, इतिहास, सब परस्पर विपरीत हैं, उनसे हम सहमत नहीं। जो लोग यह कहते हैं कि हिन्दू-मुसलमान सदैव एक दूसरे के विरोधी रहे हैं और रहेंगे, हम उनसे भी सहमत होने मे अपने को असमर्थ पाते हैं। हमारा विचार है कि हिन्दू-मुस्लिम विरोध मनुष्य की कृति है और मनुष्य यदि चाहे तो इसका अन्त भी कर सकता है। आज यदि यह अन्त प्रयत्न करने पर भी नहीं होता तो उसके भी अपने विशेष कारण हैं। खैर, इस अध्याय मे हम इतिहास के आलोक में हिन्दू-मुस्लिम-सम्बन्ध देखने का प्रयत्न करेंगे।

ग़दर के पूर्व

इस बात मे जरा भी सन्देह नहीं कि अधिकतर मुसलमानों का भारत मे आगमन आक्रमणकारियो के रूप मे हुआ। एक दूसरे के विरोधी की हैसियत से ही हिन्दू-मुसलमान एक दूसरे के सम्पर्क मे आये थे। किन्तु इससे तथा वर्तमान विरोध को देखकर यह निष्कर्ष निकालना कि हिन्दू मुस्लिम एकता सदैव आकांक्षा की वस्तु रही वास्तविकता की नहीं, भ्रमात्मक है। भारतीय इतिहास (जिसको कि जान-बूझकर विकृत करके हिन्दू-मुस्लिम विरोध को प्रोत्साहन दिया गया

है) के अनुशीलन से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि उनके वर्ष पारस्परिक प्रेम और सौहार्द में बीते हैं और एक दूसरे का विरोध करने में नहीं। आज जो विरोध की ऐतिहासिक घटनाएँ हम पढ़ते सुनते हैं वे वास्तव में भारत के इतिहास में अपवाद रूप में बिखरी हुई हैं। उनकी जड़ विशेष व्यक्तियों की मूर्खता तथा मदान्धता में है और वे किसी सदैव वर्तमान व्यापक विरोध की सूचक नहीं हैं। फिर आज जो उनका प्रचार हो रहा है वह कुछ मनुष्य की स्वाभाविक प्रवृत्ति के कारण है और कुछ वर्त्तमान विरोध के कारण। जब तक दो भाई मेल से रहते हैं कभी कोई खास बात नहीं होती है किन्तु जहाँ उनमें खटपट हो जाती है वे पुराने प्रेम को भूल जाते हैं। प्रेम और मित्रता का इतिहास वैर और ईर्षा-द्वेष की कहानी हो जाता है। उस समय केवल विरोध की ही छोटी-छोटी घटनाओं को तूल नही दिया जाता है, अपितु साधारण घट-नाएँ भी वैर भाव से भरे हृदयों को विरोध-मूलक प्रतीत होने लगती हैं। पारसी नेता सर रुस्तम मसानी लिखते हैं, 'इतिहासकार के कान संवादी स्वरों के श्रवण में असमर्थ होते हैं। वह केवल विवादी स्वरो को लिपिबद्ध करता है। यदि एक परिवार के दो व्यक्ति, या किसी सम्प्रदाय या राष्ट्र में दो व्यक्ति समुदाय, युग-युग तक शान्तिपूर्वक निवास करते हैं तो शायद ही कोई उधर ध्यान दे। किन्तु जहाँ उनमें झगड़ा हुआ कि उनकी विरोध-गाथा गप्पें लड़ाते हुए पड़ोसियों तथा प्रेसवालों के लिये रोचक बन जाती है; और वहाँ से वह इतिहासकार तक पहुँचती है। सैकड़ों वर्षों तक हिन्दुओं और मुसलमानों ने एक दूसरे से भाईचारा निभाया है और वे परस्पर शान्तिपूर्वक गाँवों, और

शहरों में भी रहे हैं। उन्हें अपनी अनिवार्य सांस्कृतिक एकता का ध्यान था और पारस्परिक भेदों के प्रति वे सहनशील थे। इतिहास की यह लम्बी कथा भुला दी गई और अस्थाई विरोध-भावना तथा धर्म मदान्धो और उत्पात मचाने वालों द्वारा उत्तेजित झगड़े भयानक रंग मे रंग कर उपस्थित किये जाते हैं।'

ज्योंही मुसलमानों द्वारा भारत विजय का कार्य समाप्त हुआ वे और हिन्दू एक दूसरे से प्रभावित होने लगे। राजनीति धर्म, संस्कृति, भाषा, साहित्य, कला तथा व्यवहार मे आदान-प्रदान होने लगा। प्रारम्भ मे ही हिन्दू सिपाही तथा सरदार मुसलमान शासको के नेतृत्व मे लडते हुए दिखाई देने लगे और कुछ समय बाद मुसलमानो ने भी हिन्दू राजाओ की सेनाओं मे सम्मिलित होना प्रारम्भ कर दिया। मुस्लिम अधि-पत्य के प्रारम्भ से ही हिन्दुओ ने शासन प्रबन्ध मे तथा राज्य को रक्षा मे सहायता पहुँचाना प्रारम्भ कर दिया। मोहम्मद गज़नवी ने, जिसको कि तीव्र हिन्दू-विरोधी के रूप मे चित्रित किया गया है, अपने विरोधी सहधर्मियों के दमन मे हिन्दुओ से सहायता ली थी। आगे चल कर 'तिलक' नामक कोई हिन्दू पदाधिकारी उसकी भारतीय सेना का सेनापति नियुक्त हुआ था। अकबर की उदार नीति के कारण उत्तर भारत के प्रायः सारे हिन्दू उसके साथ हो गये थे। बीरबल, मानसिंह और टोडरमल ऐसे सेनापति राजा तथा प्रबन्धक का सहयोग उसे प्राप्त था। उसकी यह उदारनीति उसके उत्तराधिकारियो द्वारा बराबर अपनाई गई। औरङ्गजेब ने अपनी धर्मान्धता के कारण हिन्दुओं की सहानुभूति को कुचल दिया जिसके कारण मुगल साम्राज्य की नींव हिल गई। दक्षिण के बहमनी राज्य

की दृढ़ता भी अधिकतर हिन्दुओं के सहयोग पर निर्भर थी। हिन्दूपति शिवा जी के पिता बीजापुर राज्य के दृढ़ स्तम्भों में से थे। दूसरी ओर विजयनगर के हिन्दू राज्य की सेना में एक बड़ी संख्या मुसलमानों की थी। शिवाजी ऐसे हिन्दुत्व के पुजारी की सेना में भी मुसलमान योद्धाओं की कमी न थी।

इस प्रकार जहाँ एक ओर सिद्ध है कि हिन्दू या मुस्लिम होने के नाते लोगों में एक दूसरे से विरोध नहीं था वहाँ मुसलमानों में भी प्रथम राष्ट्रीयता का भाव वर्त्तमान न था। हिन्दुओं की भाँति ही मुस्लिम राजवंशों में परस्पर विरोध रहा है। एक के बाद एक मुस्लिम राजवंश पूर्ववर्त्ती सहधर्मी राजवंश को च्युत करके ही सिंहासनारूढ़ हुआ। ग़ुलाम, ख़िलजी, तुग़लक, सैयद, लोदी और मुग़ल वंश एक के बाद एक दूसरा पहले को हटाकर दिल्ली के सिंहासन के स्वामी बने। तैमूर और नादिरशाह ऐसे आक्रमणकारियों ने भी हिन्दू मुस्लिमों में कोई भेद किया हो उसका प्रमाण नहीं मिलता है। कहने का तात्पर्य यह है कि धर्म की एकता ने न तो कभी भारतीय मुसलमानों को एक राष्ट्र के रूप में बाँधा है और न कभी हिन्दुओं को। सरदारों, राजाओं तथा सम्राटों की महत्त्वाकांक्षाएँ धर्म के आश्रय से ज़रा कम चली हैं। यह पारस्परिक मेल ग़दर तक बराबर रहा है।

भाषा के क्षेत्र में अरबी फारसी को छोड़कर दिल्ली मेरठ के आसपास बोली जाने वाली खड़ी बोली अपनाई गई। हाँ उसमें अरबी फारसी के कुछ शब्दों का आजाना स्वाभाविक था। साहित्यरचना के लिये भी उर्दू को ही अधिकतर अपनाया गया। जहाँ एक ओर सैकड़ों मुसलमानों ने हिन्दी-काव्य-रचना में सहयोग दिया वहाँ अनेक हिन्दुओं ने भी

उर्दू (फारसी भी) साहित्य की वृद्धि की। कला के क्षेत्र में भी आदान-प्रदान हुआ और दोनो धर्मावलम्बियो का पारस्परिक व्यवहार भी एक दूसरे से अधिक भिन्न नहीं था। दोनों धर्मों का एक दूसरे पर प्रभाव पडा और कवीर दादू ऐसे सन्तों के प्रयत्न दोनों धर्मों की एकता स्थापित करने की ओर अग्रसर हुये। संस्कृत ग्रंथों का फारसी में अनुवाद दोनो को एक दूसरे के धर्म, विचार-धारा, साहित्य कला आदि समझाने में और भी सहायक हुआ। एक ओर तो सन्तों के प्रयत्न थे और दूसरी ओर विद्वानों और वादशाहों के। उदार हृदय राजाओ तथा वादशाहों के दरवार वास्तव मे दोनों ओर के उच्चकोटि के कलाकारों, पण्डितों और साहित्य-मर्मज्ञों की मिलन-भूमि थे। अकवर का नाम उसके नवरत्नों के कारण सदैव अमर रहेगा।

गदर और उसके वाद

यह एकता उस समय तक पूर्णरूप से वनी रही जव तक कि हमारे शासकों की कूट-नीति ने उसे विच्छिन्न करने का प्रयत्न नहीं किया। लार्ड एलिनवरो जो कि सन् १८४२ से ४४ तक भारत के गवर्नर-जनरल थे मुसलमानों के विषय में लिखते हैं, 'यह जाति विशेष-रूप से हमारे विरुद्ध है। इसलिये हिन्दुओं को सन्तुष्ट करना ही हमारी सच्ची नीति है।' यह कथन जहाँ एक ओर मुसलमानों की राष्ट्रीयता का प्रमाण है वहाँ दूसरी ओर शासितों में पारस्परिक मतभेद उत्पन्न करके काम निकालने वाली व्रिटिश कूटनीति का भी उदाहरण है।

सन् ५७ का ग़दर करने के अपराध में मुसलमानों को भी सरकार के कोप का भाजन बनना पड़ा। सर सैय्यद अहमद खां उस समय के प्रमुख भारतीय नेताओं में थे। उन्हें मुसलमानों की यह दयनीय दशा अति खेद-जनक प्रतीत हुई और वे उनके निस्तार का उपाय सोचने लगे। किन्तु उस समय तक वे एक राष्ट्रीय नेता थे, सम्प्रदायिक नही, यह उनकी उक्तियों से स्पष्ट है। १८८४ में गुरदासपुर में दिये हुए एक व्याख्यान में वे कहते हैं 'प्राचीनतम काल से राष्ट्र शब्द का प्रयोग एक देश के निवासियों के लिये होता रहा है भले ही उनकी अपनी २ विशेषताएँ उनमें परस्पर भेद डालती हों। हिन्दू और मुसलमान भाई! क्या तुम हिन्दुस्तान के अतिरिक्त किसी और देश में रहते हो? क्या तुम एक देश के निवासी नहीं? क्या तुम एक ही देश में जलाये अथवा दफनाए नही जाते? याद रक्खो कि 'हिन्दू' और 'मुस्लिम' शब्दों का प्रयोग धर्ममात्र का भेद बताने के लिये है। अन्यथा सब लोग— चाहे हिन्दू हों चाहे मुसलमान अथवा ईसाई— जो कि इस हमारे महान् देश में बसते हैं एक ही राष्ट्र के व्यक्ति हैं। क्योंकि देश के सब सम्प्रदाय मिल कर एक ही राष्ट्र बनाते हैं, इसलिये उन सबको देश-हित करने के लिए एक होना चाहिए—उस देश का हित करने के लिए जो कि समान रूप से उन सबका है।' लाहौर में दिए हुए एक व्याख्यान में वे कहते हैं, 'मैं इन दोनों सम्प्रदायों को जो कि भारतवर्ष में रहते हैं 'हिन्दू' इस एक नाम से पुकारता हूँ—जिसका अर्थ है कि वे हिन्दूस्तान के निवासी हैं।' पटना में दिए हुए एक व्याख्यान में वे कहते हैं, 'हमारे हिन्दू भाई और मुसलमान सहधर्मी दोनों एक ही हवा में श्वास

लेते है, पवित्र गङ्गा यमुना का जल पीते हैं, ईश्वर ने जो वस्तुएँ इस देश को दी है उन्हें ही खाते है, साथ जीते हैं और साथ मरते हैं। हम दोनों ने अपनी पुरानी वेशभूषा और आदतों को छोड दिया है। एक ओर तो मुसलमानो ने हिन्दुओं की अनेक प्रथाओ को अपना लिया है दूसरी ओर हिन्दू लोगों पर मुसलमान व्यवहारों तथा प्रथाओं का गहरा असर पड़ा है। मैं दृढता के साथ कहता हूँ कि दैनिक जीवन के प्रत्येक क्षेत्र मे हिन्दू और मुसलमान, इस देश की सन्तान होने के नाते, एक है, दो नहीं। इस आधारभूत बात को जो लोग नहीं समझते और जो ऐसे विचार फैलाते हैं जिनसे कि दोनों सम्प्रदाय एक दूसरे से सदा के लिए अलग हो जायँगे उन्हें देख कर मुझे दुःख होता है। मैंने सदैव कहा है कि हमारी भारत- भूमि एक नव विवाहिता वधू के समान है। हिन्दू और मुसलमान उसकी दो सुन्दर आकर्षक आँखे हैं। यदि दोनो एक दूसरे से मिल जुल कर रहेंगे तो वधू सदैव कान्तिमई तथा सुन्दर रहेगी। किन्तु यदि उन्होने एक दूसरे को नष्ट करने की बात सोची तो उसका विकृत आँख वाली अथवा कानी हो जाना अनिवार्य है।'

किन्तु भारतीयो का दुर्भाग्य समझिए या विदेशियों की कूटनीति की सफलता कि खॉ साहब का उदार हृदय परिवर्त्तित हो गया। जिस मार्ग पर वे औरों को चलने से रोकते थे उस पर स्वयं चलने लगे। सभवत. अलीगढ विश्वविद्यालय के प्रधान मि० बेक ने उन्हे समझाया कि कॉग्रेस का साथ देने से मुसलमानो का हित-साधन नहीं हो सकता, जब कि अँग्रेजी सरकार उनकी बहुत मदद कर सकती है। मानव की स्वार्थ की

की ओर झुकने वाली प्रवृत्ति बलवती हुई और खाँ साहब ने बेक महाशय का आग्रह स्वीकार कर लिया।

सन १८८८ में जब पार्लियामेन्ट में भारतीयों को शासन प्रबन्ध में भाग देने का प्रश्न उठा तो इन बेक महाशय ने उत्पात खडा करना शुरू किया। अपनी विचारधारा को उन्होंने मुसलमानों के माथे मढा। उन्होंने एक प्रार्थना-पत्र तैयार कराया, जिसमें सरकार को अनुचित कह कर ऐसा करने से रोका गया। इस प्रार्थना-पत्र पर हजारों मुसलमानों के हस्ताक्षर लिए गये। अपढ़ हस्ताक्षर करने वालों को समझाया गया कि प्रार्थना-पत्र का उद्देश्य हिन्दुओं को गोहत्या बन्द कराने से रोकने का है। इन्हीं महाशय के प्रयत्नों से सन् १८६३ में 'मोहमडन ऐंग्लो आरियेन्टल डिफेन्स असोसियेशन आफ अपर इन्डिया (अर्थात् उत्तर भारतीय मुस्लिम अंग्रेजी पूर्वीय रक्षा समिति) नामक संस्था की स्थापना की गई जिसके मुख्य उद्देश्य थे :—

(१) अंग्रेजों को—विशेषरूप से अंग्रेजी सरकार को—मुसलमानों के विचारों से परिचित कराना,

(२) मुसलमानों के राजनैतिक अधिकारों की रक्षा करना,

(३) ब्रिटिश शासन सत्ता को दृढ़ करने वाले साधनों का समर्थन करना,

(४) जनता में राज-भक्ति का प्रचार करना,

(५) राजनैतिक आन्दोलन को मुसलमानों में फैलने से रोकना।

कॉंग्रेस की बढ़ती हुई शक्ति को रोकने का जब उन्हें कोई और साधन न सूझा तो बेक महाशय ने किस प्रकार मुसलमानों में सम्प्रदायिकता उत्पन्न कर हिन्दू-मुस्लिम विरोध की भावना को प्रोत्साहन दिया यह देखने योग्य है। चीजों को तोड़-मरोड कर रखने तथा उल्टी-सीधी बातें बनाकर साम्प्रदायिक विद्वेषाग्नि को प्रज्वलित करने में यह महाशय कितने सिद्धहस्त थे यह इनके निम्न-लिखित कथन से स्पष्ट हो जाता है :—

'गत कुछ वर्षों में इस देश में दो आन्दोलनों का जन्म हुआ है, एक तो भारतीय राष्ट्रीय कॉंग्रेस, दूसरा गोहत्या के विरुद्ध आन्दोलन। पहला अंग्रेजों के खिलाफ है और दूसरा मुसलमानों के। कॉंग्रेस का लक्ष्य शासन सत्ता को ब्रिटिश के हाथ से निकाल कर हिन्दुओं को सौंप देना है . मुसलमानों को इन मॉंगों से कोई सहानुभूति नहीं है . गोहत्या रोकने के प्रयत्न में हिन्दुओं ने मुसलमानों का बहिष्कार तक किया है इसका फल आजमगढ़ और बम्बई के खूनी दंगों में देखने को मिलता है। आन्दोलन करने वालों का सामना करने तथा प्रजातन्त्र शासन की स्थापना, जो कि इस देश की आवश्यकता तथा प्रवृत्तियों के विरुद्ध रोकने के लिए आवश्यक है कि मुसलमान और ब्रिटिश आपस में सङ्गठित हों। इसलिये हम राज-भक्ति तथा अंग्रेज मुस्लिम एकता का प्रतिपादन करते हैं।'

बीसवीं शताब्दी का प्रारम्भ—पृथक् निर्वाचन

तदुपरान्त मिन्टोमार्ले शासन सुधारों की चर्चा आरम्भ हुई। साम्प्रदायिकता की जड़ वास्तव में यहीं से मजबूत होती

है। इस समय उस पारस्परिक विरोध की नींव पड़ी जिसके कारण हिन्दू-मुस्लिम समझौता एक स्वप्न की वस्तु हो रहा है और बड़े बड़े नेता यह सिद्धान्त प्रतिपादित कर रहे हैं कि दोनों का कल्याण उनका पारस्परिक सम्बन्ध विच्छेद करने में ही है। १ अक्तूबर सन् १६०६ को प्रातः काल हिज़ हाइनेस दि आग़ा खाँ के नेतृत्व में मुसलमानों के एक डिप्यूटेशन ने लार्ड मिन्टो से मिलकर अपनी शिकायतें तथा आकांक्षाएँ प्रकट कीं। उन्होंने साम्प्रदायिक प्रतिनिधित्व की माँग की। इस डिप्यूटेशन ने विभाजन का जो कार्य पूरा किया वह पूर्व-वर्त्ती वाइसरायों की कुटिल नीति भी नहीं कर सकी थी। और इसके पीछे थे कौन? बेक साहब के उत्तराधिकारी श्री-आर्चबोल्ड। इसमें इन्हीं महाशय की कुमन्त्रणा का सहयोग था। ऐसा प्रतीत होता है कि आवेदनपत्र लिखने तक में इन्होने सहायता पहुंचाई थी। अपने १० अगस्त सन् १६०६ के पत्र में आप नवाब मोहसीनुल्मुल्क को लिखते हैं, 'मै तो यह सलाह दूँगा कि हम राजभक्ति की भावना की अभिव्यक्ति से प्रारम्भ करें। स्वायत्तशासन की दिशा में सरकार ने जो कदम बढ़ाने का निश्चय किया है उसकी तारीफ़ की जानी चाहिए, किन्तु हमें अपनी आशङ्का व्यक्त करनी चाहिए कि यदि चुनाव का सिद्धान्त लागू किया गया तो वह मुस्लिम हित के विरुद्ध होगा। अतः आदरपूर्वक यह सुझाव पेश किया जाय कि मुस्लिम जनमत को सन्तुष्ट करने के लिये नामज़दगी या धर्म के आधार पर प्रतिनिधित्व का सन्निवेश किया जाय। हमें यह भी कहना चाहिए कि भारत ऐसे देश में ज़मीदारों के विचारों को उचित महत्त्व प्राप्त होना चाहिए।' और वास्तव में हर एक बात इस गुप्त मन्त्रणा के अनुसार हुई।

ऐसी परिस्थिति में सरकार को क्या करना था ? अपने मई सन् १६०६ के पत्र मे लार्ड मिन्टों मार्ले साहब को लिखते है, 'कुछ समय से मैं कांग्रेस के उद्देश्यों के (विरोध के) लिए समान बलवाली प्रतिक्रिया की संभावना पर विचार कर रहा हूं।' स्वयं भारत-मन्त्री श्री मार्ले अपने ६ जून सन् १६०६ के पत्र में तत्कालीन वाइसराय लार्ड मिन्टो को लिखते हैं:— 'प्रत्येक व्यक्ति हमें सावधान कर रहा है कि हिन्दुस्तान में एक नई भावना उत्पन्न हो रही है और फैल रही है। लारेन्स, चिरोल, सिडनी, यों सभी वही राग अलाप रहे हैं, 'तुम उसी प्रकार से उन पर शासन कायम नहीं रख सकते। कांग्रेस पार्टी तथा कांग्रेस के सिद्धान्तों के बारे में तुम चाहे जो कुछ सोचो किन्तु तुम्हें उनसे भुगतना है। निश्चित रूप से यह जान लो कि शीघ्र ही मुसलमान लोग भी तुम्हारे खिलाफ कांग्रेस से मिल जायँगे' इत्यादि इत्यादि'। इस प्रकार कांग्रेस की दिन प्रति दिन बढ़ती हुई शक्ति हमारे शासकों के लिए समस्या हो रही थी। साथ ही मुसलमानों को सहयोग उसे न प्राप्त हो, उन्हें यह भी ध्यान रखना था। फलतः इन्डियन काउन्सिल्स एक्ट सन १६०६ के आधार पर चुनाव के जो नियम बनाए गए उन मे साम्प्रदायिक प्रतिनिधित्व तथा प्रथक निर्वाचन के सिद्धान्त मान लिये गये।

उक्त डिप्यूटेशन के उत्तर में लार्ड मिन्टो ने कहा था— 'इस्लाम मतालम्बियों के न्यायपूर्ण उद्देश्य तथा उनके हमारे साम्राज्य के इतिहास में भाग लेने के निश्चय की प्रशंसा करने का जो अवसर मुझे दिया जा रहा है उसके लिये मैं अनुगृहीत हूं। जब तुम लोग कहते हो कि तुम्हें अपने शासकों के न्याय तथा समान व्यवहार में वास्तविक विश्वास है और तुम लोग

उन्हें वर्त्तमान परिस्थिति में परेशान नहीं करना चाहते तो तुम लोगों को यह अवश्य ही मालूम होगा कि नई घटनाओं ने नई उम्र के मुसलमानों में ऐसी भावनाएं जाग्रत कर दी हैं कि शीघ्र ही वे विचारपूर्ण मंत्रणा तथा गंभीर नेतृत्व के बाहर हो सकते हैं..........।

तुम्हारी यह माँग न्यायपूर्ण है कि तुम्हारा महत्व तुम्हारी संख्या पर ही निर्धारित नहीं होना चाहिये अपितु तुम्हारे सम्प्रदाय की राजनैतिक महत्ता तथा तुम्हारी साम्राज्य की सेवाओं का भी ध्यान रखना चाहिये ....।

मै तुम्हारा पूर्ण सहमत हूँ.... ... ... ।'

यह माँग कितनी न्यायपूर्ण थी तथा मुसलमानों की ब्रिटिश साम्राज्य की क्या सेवाएँ थी यह कहने की आवश्यकता नहीं।

पहले तो मुसलमानों की ओर से वास्तव में कोई माँग ही नही थी। जो कुछ था वह हमारे शासकों की कृपा तथा उनके कृपापात्रों की अनुकम्पा का परिणाम था। भारतीय राष्ट्रीय कॉंग्रेस के तत्कालीन सभापति ने इस डिप्यूटेशन को कमाण्ड परफार्मेन्स या 'सरकारी प्रेरणा पर आश्रित अभिनय' कहा था। यह आरोप इन्डियन सेन्ट्रल कमेटी आफ स्टेच्यूटेरी कमीशन की रिपोर्ट में स्वीकार किया गया है: 'उस समय मुसलमानों की ओर से प्रथक निर्वाचन की कोई स्वतः उठानेवाली माँग नहीं थी। वह केवल एक ख्यातिप्राप्त अफसर की प्रेरणा से पेश की गई थी'। स्वयं मार्ले साहब पहले पृथक निर्वाचन के विरुद्ध थे, किन्तु बाद में उन्होंने लार्ड मिन्टो के सामने आत्म-समर्पण कर दिया। अपने 'रीकलेक्शन्स' में लार्ड मार्ले लिखते हैं कि उन्होने लार्ड मिन्टो को लिखा 'मैं मुसलमानों के झगड़े

मे अब कभी तुम्हारी बात नहीं मानूँगा। मैं आपको एक बार फिर स्मरण कराता हूँ कि उनके अधिक स्वत्वों के सम्बन्ध में तुम्हारे प्रारम्भिक वक्तव्य ने ही मुस्लिम माँगों का झगड़ा पैदा किया'।

यह बात भी नहीं थी कि सरकार पृथक निर्वाचन के दुष्परिणामो से अनभिज्ञ थी। फिर भी जो कुछ उसने किया वह स्वार्थवश किया। उनको चिन्ता थी किसी प्रकार कांग्रेस के विरुद्ध मुसलमानो को अपनी ओर मिलाये रखने की। श्रीमती मिन्टो को पत्र लिखते हुए एक उच्चपदाधिकारी पृथक निर्वाचन की स्वीकृति के सम्बन्ध में लिखता है 'मुझे आपको एक प त्ति मे यह बतला देना चाहिए कि आज एक महान् घटना घटी है—राजनीति का एक ऐसा कार्य जो कि भारत और भारतवर्ष के इतिहास पर अनेक वर्षो तक प्रभाव रक्खेगा। यह वास्तव मे 'छः करोड़ बीस लाख व्यक्तियो को राजद्रोही विरोधियों मे सम्मिलित होने से रोकना था।'

पृथक निर्वाचन का सिद्धन्त देश के लिये घोर अनर्थकर सिद्ध हुआ। यह ईश्वरीय नियम है जो व्यक्ति परस्पर जितने ही अधिक सम्पर्क में आते हैं उनका सम्बन्ध उतना ही दृढ हो जाता है। बिना परिचय के प्रेम कैसा! पृथक निर्वाचन मे न मुस्लिम उम्मेदवारो को हिन्दुओ के पास जाना पड़ता है और न हिन्दू उम्मेदवारों को मुसलमानों के पास। चुने जाने के लिए न एक हिन्दू को मुसलमानो की सहायता की आवश्यकता है और न एक मुसलमान को हिन्दुओं की सहायता की। यदि एक मुसलमान अधिकतर मुसलमानो को प्रसन्न रख सकता है तो उसका चुना जाना निश्चित है—शेष चाहे सारा देश उनका विरोधी हो। इसका स्वभाविक परिणाम यह होता

है कि इस प्रकार चुने हुये सदस्यगण अपने-अपने सम्प्रदायों का ही हित साधन करने में अपने को धन्य मानते हैं और साम्प्रदायिकता की वेदी पर राष्ट्रीयता और देशभक्ति की बलि चढ़ा देते हैं। फिर ऐसे ही संकीर्ण दृष्टिकोण वाले व्यक्ति सम्प्रदायों द्वारा चुने भी जाते हैं। इस के अतिरिक्त एक ओर तो दो सम्प्रदायों के मतदाताओं में कोई सौहार्द्य उत्पन्न नहीं होता दूसरी ओर एक दूसरे के सम्पर्क में न आने के कारण वे एक दूसरे से प्रभावित नहीं होते। फलतः उनके बीच की खाई कभी पटती नहीं दिखाई देती। एक दूसरे से स्वतंत्र होने के कारण उन्हें समझौते की जरूरत भी महसूस नहीं होती। दूसरी ओर एक सम्प्रदाय का हित दूसरे सम्प्रदाय के हित से टकराता है। ऐसी परिस्थिति में आपस में समझौता करने के बजाय वे अधिकारियों के पास हित-रक्षा (!!!) के लिये दौड़े हुए जाते हैं। लार्ड मान्टेग्यू ने पृथक् निर्वाचन के फलस्वरूप उत्पन्न इस परिस्थिति का स्वयं वर्णन किया है:—'अब्राह्मणों की जो बात मुझे अत्यन्त आश्चर्यप्रद प्रतीत होती है वह यह कि यद्यपि वे ब्राह्मणों के प्रभाव का प्रतिरोध करने की शक्ति स्वयं रखते हैं किन्तु प्रतिरोध करने के बजाय वे पेट के बल लेट कर गवर्नमेन्ट से सहायता की याचना करते हैं।' वास्तव में मान्टेग्यू साहब को जो वस्तु आश्चर्यप्रद प्रतीत होती है वह साम्प्रदायिक प्रतिनिधित्व और अल्पमतसंरक्षण का स्वाभाविक फल है। पैरों पर खड़े होने की अपेक्षा पेट के बल लेटना अधिक आसान है। व्यक्ति समुदायों में साम्प्रदायिकता जगती है और क्योंकि वे समझौता करने के कार्य में दीक्षित नहीं होते हैं अतः अधिकारियों के पास हितरक्षा के लिए दौड़ २ जाते हैं। प्रत्येक सम्प्रदाय

अल्पसंख्यक संरक्षण की आड़ लेना चाहता है। इस परिस्थिति को एक लेखक ने बड़े व्यंग्यपूर्ण ढंग से व्यक्त किया है—'भारत के प्रत्येक समुदाय अल्पमत मे है—हिन्दू, मुसलमान, सिक्ख, ईसाई, पारसी, एंग्लो-इन्डियन, ब्रिटिश, ब्रिटिश-व्यापारी—और सबके ऊपर दलितवर्ग अल्पमत में है। मजदूर जो कि संख्या की दृष्टि से बहुमत में हैं वे भी अल्पमत मे माने जाते हैं। स्त्रियां भी अल्पमत मे हैं। बहुत शीघ्र कानून पण्डों और वेश्याओं को भी अल्पमत मे मानने लगेगा।" क्या इस गणना का कहीं अन्त है? इसी प्रकार होती है अल्पसख्यो की रक्षा? यह एक ऐसी हितरक्षा है जिससे विभिन्न हितों की रक्षा के प्रयत्न में उनका पारस्परिक समन्वय नहीं किया जाता। सम्प्रदायों को अलग-अलग स्वतंत्र इकाइयाँ मान कर चला जाता है। भला ऐसे कृत्रिम उपायो से कब किसकी हितरक्षा हो सकी है। ऐसी ही अस्वाभाविकताओं को देखकर हिल्टन यंग कमीशन ने कीनियाँ में और डोनोमोर कमीशन ने लका मे पृथक निर्वाचन के विरुद्ध राय जाहिर की थी।

इन सब दोपो को, जैसा कि हम पहले कह आए हैं, पृथक् निर्वाचन के समर्थक जानते थे। मुस्लिम डिप्यूटेशन के तीन वर्ष बाद सर इमाम अली कहते हैं कि पृथक निर्वाचन राष्ट्रीयता का विरोधी है। मौ० मोहम्मद अली कहते हैं "पृथक निर्वाचन से भारत को आजादी नहीं मिल सकती; यद्यपि सन् १६०६ मे उसके समर्थकों में होने के नाते मैं इसका परित्याग करने वाला आखिरी व्यक्ति होऊंगा।" जब सर वी० पी० माधवराव ने पृथक निर्वाचन की बुराइयाँ बतलाते हुए श्री मान्टेग्यू से इसके हटाने का प्रस्ताव किया

तो उत्तर मिलता है 'हाँ, यह बिल्कुल ठीक है, किन्तु यह कहना कि अब उससे पीछा छुड़ा सकते हैं असम्भव है।"

नतीजा यह निकला कि हिन्दुओं को भी अपनी स्वत्वरक्षा का भान हुआ और सन् १९१० में हिन्दू महासभा की स्थापना हुई। मुस्लिम लीग की स्थापना सन् १९०६ में ही हो चुकी थी। सन् १९१३ तक कॉग्रेस पृथक निर्वाचन का विरोध करती रही किन्तु सन् १४ से उसका भी रुख पल्टा और सन् १९१६ में लीग कॉग्रेस समझौता हो गया जो कि लखनऊ पेक्ट के नाम से प्रसिद्ध है। इस समझौते में कुछ लोगों के विरोध के बावजूद पृथक निर्वाचन का सिद्धान्त स्वीकार कर लिया गया।

महायुद्ध के उपरान्त

यद्यपि प्रारम्भ में पृथक निर्वाचन का कोई बुरा प्रभाव स्पष्टतया लक्षित न हुआ किन्तु उसका विष वास्तव में प्रथम महायुद्ध के बाद फैला। युद्धोतर काल में मुसलमानों का खिलाफत आन्दोलन, हिन्दुओं की उससे सहानुभूति तथा पंजाब में फौजी शासन का विरोध तथा दोनों पक्षों के आदर्शों और उनकी समान अभिलाषाओं ने हिन्दू मुस्लिमों को कुछ समय के लिए संगठित कर दिया। किन्तु इस संगठन का एक विशेष अंग था १९१९ के विधान के अनुसार प्रस्तावित व्यवस्थापक सभा का बाहिष्कार करना। इस बाहिष्कार में पृथक् निर्वाचन का बाहिष्कार भी स्वतः सम्मिलित हो गया। साथ ही साथ इस समय जनता में भी राष्ट्रीय जागृति पैदा की गई और महात्मा गान्धी राष्ट्रीय आन्दोलन के नेता बने।

किन्तु लीग और कांग्रेस का यह मेल अधिक समय तक न चल सका। सन् १६२३ के नववर्ष दिवस को स्वराज्य पार्टी का जन्म हुआ। कांग्रेस के सितम्बर सन् १६२३ को देहली अधिवेशन मे काउन्सिल विरोध स्थगित कर दिया गया। उसी वर्ष नवम्बर मे स्वराज्य पार्टी ने चुनावो में भाग लिया। शीघ्र ही वह काउन्सिल की सबसे बड़ी पार्टी हो गई। कुछ समय बाद स्वराज्य पार्टी फिर कांग्रेस मे शामिल हो गई। तब से अब तक, असहयोग के दिनो को छोड़ कर, सदैव कांग्रेस का स्थान व्यवस्थापक सभाओं में सर्व प्रथम रहा। किन्तु यही कांग्रेस के लिए अहितकर सिद्ध हुआ। एक ओर तो स्वय कांग्रेस द्वारा पृथक् निर्वाचन का क्रियात्मक रूप में समर्थन हुआ, दूसरी ओर उसकी राष्ट्रीयता लोगों द्वारा गलत समझी गई और यही आगे चल कर हिन्दू-मुस्लिम वैमनस्य का कारण बनी। साईमन कमीशन का बाहिष्कार हिन्दू मुसलमानों ने समान रूप से किया, किन्तु नेहरू रिपोर्ट के सबन्ध मे फिर मतभेद उत्पन्न हो गया।

सन् १६३०-३२ तक तीन गोल मेज कान्फ्रेन्स हुई। यहाँ पर भी ब्रिटिश राजनीतिज्ञो ने यथा सभव हिन्दु-मुस्लिमों में मतभेद उत्पन्न करने की कोशिश की। मुसलमान साम्प्रदायिको को प्रतिक्रियावादी बनाने का एक बड़ा ही महत्त्वपूर्ण एवं सफल प्रयत्न श्री एडवर्ड बेन्टल ने किया। एक गुप्त विज्ञप्ति मे वे स्वयं कहते हैं—'साधारण चुनाव के बाद गवर्नमेन्ट के दक्षिण पार्श्व ने यह निश्चय किया कि कान्फ्रेन्स समाप्त कर दी जाय तथा कांग्रेस का सामना किया जाय। मुसलमान जो कि केन्द्र मे उत्तरदायी शासन नहीं चाहते हैं, प्रसन्न हुए। .. हमने यह निश्चय कर लिया था कि कांग्रेस के मुकाबले से

बचा नहीं जा सकता। अतः हमने यह अनुभव किया तथा कहा कि वह जितनी ही जल्द आए उतना ही अच्छा है। किन्तु हमने यह निश्चय किया कि हमको जितने भी अधिकाधिक हो मित्र बनाने चाहिए। मुसलमान तो बिल्कुल ठीक थे ही। अल्पमत समझौते तथा सरकार के साधारण रुख ने उसे और निश्चित कर लिया। वही बात राजाओं तथा अल्प संख्यकों के सम्बन्ध में थी"। यही नही, लेजिस्लेटिव असेम्बली में आग़ा खाँ की उस माँग का प्रकाशन हुआ जिसमें उन्होंने गोलमेज़ कान्फ्रेंस के अवसर पर की हुई सेवाओं के पुरस्कार स्वरूप भारतवर्ष के किसी भाग के शासक बनाए जाने की प्रार्थना की थी। मतलब यह है कि इन्हीं प्रतिक्रियावादी साम्प्रदायिकों के रुख के कारण इतने परिश्रम और त्याग के बाद मिला सन् १९३५ का विधान! इस विधान के विरुद्ध होते हुए भी लीग और कांग्रेस दोनो ने चुनाव में भाग लिया। बस अब आगे से विरोध की और वृद्धि हुई जिसमें देशी तथा बिदेशी दोनों प्रकार की घटनाओं का सहयोग था।

पदग्रहण

इस समय संसार के देश एक दूसरे से इतने निकट रूप से सम्बद्ध हैं कि एक देश की राजनैतिक परिस्थिति दूसरे देश पर प्रभाव डालती ही है। अतः भारत भी योरोपीय देशों के नए सिद्धान्तों तथा परिस्थितियों से अछूता कैसे रह सकता था। पश्चिमी देशों की उग्र राष्ट्रीयता तथा जातीयता भारत पर अपना प्रभाव डाले बिना न रह सकी। सीरिया में सन् १९३८-३९ में ईसाइयों तथा शिया मुसलमानों ने सुन्नियों

का जो विरोध किया उसमें और सन् १९३७-३९ के हिन्दू मुस्लिम विरोध में आश्चर्यजनक समानता है (डा० वेनी-प्रसाद)। किन्तु इससे भी अधिक समानता जेकोस्लोवाकिया के सूडेटन जर्मनों के आन्दोलन में मिलती है। इनकी संख्या जेकोस्लोवाकिया की आबादी की करीब करीब चौथाई है और ये लोग प्रधानतया बोहेमिया, मोराविया और साइलेशिया के प्रान्तों मे रहते हैं। इन्होंने शासन प्रबन्ध तथा राजनीति में अधिकाधिक भाग लेने का आन्दोलन किया। जर्मनी की प्रेरणा से अल्पमत पर अत्याचार का बहाना लेकर जेको-स्लोवाकिया से अलग किये जाने की माँग पेश की गई। सूडेटनों ने अल्पमत पर अत्याचार के दोपारोपणों को बिना सिद्ध किए हुए किन्तु इसी आधार पर जेकों के विरुद्ध आन्दो-लन खड़ा किया। जेक सरकार ने उन्हें, जितनी ही अधिक सुविधाएँ देने का प्रयत्न किया उतनी ही वे अपनी माँगे बढाते गए। २४ अप्रैल सन् १९३८ को कार्ल्सबेन्ड में व्या-ख्यान देते हुए कोनर्ड हेनलीन (सूडेटन जर्मनों के नेता) की आठ बातों मे यह भी सम्मिलित थी कि जेकोस्लोवाकिया एक राज्य है, जिसमे जर्मन अल्पसंख्या में सम्मिलित है। सूडेटन जर्मनों के लिए जेको के बराबर सब सुडेटन जर्मनों को सम्मिलित रूप मे एक अलग सत्ता स्वीकार किए जाने की और सूडेटन प्रदेश में जर्मनों को पूर्ण स्वराज्य तथा जर्मन संस्कृति, सभ्यता तथा सिद्धान्तों के प्रचार की पूर्ण स्वतन्त्रता की माँगें की गई। यह मागे यहाँ तक बढीं कि होमरूल तक का प्रस्ताव जर्मनों ने ठुकरा दिया। अन्त मे जर्मनी, फ्रांस तथा ब्रिटेन के सम्मिलित दबाव के फल स्वरूप सूडेटेन प्रदेश जर्मन साम्राज्य मे मिला दिया गया। दूसरी ओर जेकोस्लो-

वाकिया की एकता की माँग ने ज़ोर पकड़ा। इस प्रकार द्वितीय महायुद्ध के बीज का बीज़ारोपण हुआ।

सूडेटन जर्मनों का शासन-प्रबन्ध में अधिक भाग की माँग पेश करना, उनकी माँगों का दिन प्रतिदिन बढ़ता जाना, उनके द्वारा जेकोलोवाकिया की एकता का अस्वीकार किया जाना, बिना साबित किए हुए जेको पर पक्षपात तथा अत्याचार के दोषारोपण करना, जेकों के बराबर अधिकार माँगना, यहाँ तक कि अलग हो जाना इस सबमें और मुस्लिम लीग की राजनीति के विकास में इतनी समानता है कि देखे ही बनता है। अतः यदि हम कहे कि लीग पश्चिम द्वारा प्रभावित हुई तो इसमें कोई अस्वाभाविकता न होगी।

उधर यह विदेशी घटनाचक्र इधर कांग्रेस के पद ग्रहण ने भी विरोध का वृद्धि करने में सहायता दी। अप्रैल सन् ३६ को सर वजीर हुसेन के सभापतित्व में लीग का जो अधिवेशन हुआ था उस तक में कांग्रेस तथा हिन्दुओं के ऊपर इस प्रकार की बाण वर्षा नहीं हुई थी। किन्तु कांग्रेस का पद ग्रहण लीग को खल गया। कांग्रेस छः छः प्रान्तों में लीग तथा अन्य कांग्रेस से असहयोग करनेवाली पार्टियों को ताक में रखकर मन्त्रिमण्डल बना ले और मुस्लिम लीग उन प्रान्तों में भी जहाँ मुसलमान बहुमत में हैं बिना गैर-मुस्लिम सहायता के एक भी मन्त्रिमण्डल स्थापित न कर सके। कांग्रेस के मन्त्रि-मण्डल बेखटके कांग्रेस की नीति को कार्यरूप में परिणित करें और लीग के मन्त्रिमण्डल कदम कदम पर ठोकर खाकर गिर पड़ें। यह वास्तव में खलने वाली बात थी। मुस्लिम लीग को यह अनुभव हुआ कि सत्ता के भारतीय हाथों में आजाने पर कांग्रेस इसी प्रकार स्थान-स्थान पर बहुमत प्राप्त कर लेगी

और लीग को छप्पर पर सूखने के लिए छोड़ दिया जायगा। इस भय को कांग्रेस की मुसलमान जनता के सम्पर्क मे आने की योजना ने और भी बढा दिया। हिन्दुओ पर अमित प्रभाव रखने के कारण कांग्रेस का छः प्रान्तो मे बहुमत निश्चित है ही, यदि मुसलमानो मे भी कांग्रेस का प्रचार बढ़ा तो भारत का शासन प्रबन्ध निर्विरोधरूप से कांग्रेस के हाथ मे चला जायगा। स्वयं जिन्ना साहब ने लीग के लखनऊ अधिवेशन मे सभापति के पद से भाषण देते हुए सन् १६३७ में कहा था :—

'मुसलमानो को अधिकाधिक विरोधी बनाने का उत्तरदायित्व कांग्रेस के नेताओ पर है. विशेष कर पिछले दस वर्षों के, क्योकि उन्होने पूरी तौर पर हिन्दू नीति का अनुसरण किया है। और जब से उन्होने छः प्रांतो मे, जहाँ वे बहुमत मे है अपनी सरकारे स्थापित की हैं उन्होने अपने वचनो कार्यो तथा कार्यक्रम से और भी अधिक स्पष्ट कर दिया है कि मुसलमान उनसे किसी प्रकार के न्याय अथवा ईमानदारी की आशा नहीं कर सकते। जहाँ कही वे बहुमत मे है और जहाँ कहीं यह उन्हें ठीक जॅचा उन्होने मुस्लिम लीग पार्टियों से सहयोग करना अस्वीकार कर दिया और पूर्ण आत्म समर्पण तथा अपने प्रतिज्ञा-पत्रो पर हस्ताक्षर कराने की माँग की।'

जिन्ना साहब अपने व्याख्यान मे कहते है—'हिन्दी अब भारत की राष्ट्रभाषा होगी और 'वन्दे मातरम्' राष्ट्रीय गान होगा। कांग्रेस झंडा को प्रत्येक व्यक्ति को स्वीकार करना पड़ेगा तथा उसका आदर करना पड़ेगा। जो

थोड़ी-सी शक्ति और उत्तरदायित्व उनके हाथ में आया उसके प्रारम्भ में ही इन बहुमत वालों ने अपनी करामात दिखा दी कि हिन्दुस्तान हिंदुओ के लिये है। कांग्रेस राष्ट्रीयता का, वास्तव में, वहाना बनाती है और हिन्दू महासभा कोमल शब्दों तक का प्रयोग नहीं करती।' लीग ने कांग्रेस के विरुद्ध प्रचार करना शुरू किया। जगह जगह कांग्रेस के मुस्लिमों पर अत्याचार की आवाज़े उठने लगीं। किन्तु यह सब था प्रचार मात्र—मुस्लिम जनता का हृदय कांग्रेस की ओर से फेरने का एक प्रयास। इनमें सत्य कहाँ तक है उसके लिये हम कुछ निष्पक्ष मत दे सकते हैं। युक्त प्रांत के भूतपूर्व गवर्नर सर हेग ने लन्दन में सर ह्यूग ओनील (तत्कालीन भारत उपमन्त्री) के सभापतित्व में भाषण देते हुये कहा—साम्प्रदायिक समस्याओं से सम्बन्ध रखने वाले मामलो में मेरी राय में मन्त्रियों ने निष्पक्षता से तथा न्याय की दृष्टि से कार्य किया। इसके रचनात्मक क्षेत्र में कांग्रेसी शासको ने उत्साह, विचारशीलता तथा पर्याप्त मात्र में आदर्शवादिता से काम लिया है। प्रो० कूपलेन्ड का कथन है, 'मेरे विचार से निष्पक्ष जाँच से पता चलेगा कि इनमें से (लीग के लगाये हुये) बहुत से आरोप वढ़ा-चढ़ा कर कहे हुये अथवा महत्त्व से शून्य थे। वहुत-सी घटनाएँ जिनकी शिकायत की गई हैं कांग्रेस पार्टी के उत्तरदायित्व शून्य सदस्य विशेषों के कारण हुई थीं। और यह आरोप कि कांग्रेस ने जान-बूझ कर मुस्लिम विरोधी नीति का अनुसरण किया निश्चय ही सिद्ध नहीं होता।' लन्दन टाइम्स नामक-पत्र लिखता है, 'ऐसा प्रतीत होता है कि कांग्रेस मन्त्रि-मण्डलों ने, उन प्रांतो मे जहाँ कि हाल में शासन सत्ता उनकी पार्टी के हाथ

मे थी, मुसलमानों के प्रति अच्छा रुख अख्तयार किया।'
इसी प्रकार अन्य अनेक निष्पक्ष सम्मतियाँ दी जा सकती हैं।

स्वयं कांग्रेस के नेताओं की ओर से लीग को आरोपों की सत्यता सिद्ध करने की चुनौती दी गई लेकिन आज तक कभी लीग ने अपने आरोपों को जनता के सामने रखकर सिद्ध नहीं किया। जब कांग्रेस ने लीग पर स्पष्ट करने के लिये अधिक दबाव डाला तो जिन्ना साहब ने यह कह कर कि उन्होंने वाइसराय को रिपोर्ट दे दी है अपना पीछा छुड़ाया। क्या जिन्ना साहब को वाइसराय से यह आशा थी कि वे अन्वेषण करके उचित कार्यवाही करेंगे? सारांश यह है कि जहाँ तक कांग्रेस पर लगाये गये साम्प्रदायिकता तथा पक्षपात के दोषारोपण का सम्बन्ध है वह निराधार है। हाँ, जहाँ तक मुसलमानो की आशंका का प्रश्न है उसमे कुछ स्वाभाविकता अवश्य है। कांग्रेस के झंडे और वन्देमातरम् गान का प्रचार उन दिनों वास्तव में अधिक हुआ था। किन्तु इससे यह निष्कर्ष निकालना कि हिन्दुत्व का प्रचार और मुस्लिम संस्कृति का संहार हो रहा है, जिन्ना साहब ऐसे साम्प्रदायिक का ही कार्य था। कांग्रेस एक राष्ट्रीय संस्था है साम्प्रदायिक या जातीय नहीं। हाँ हमें यह मानना पड़ेगा कि यदि कांग्रेस ने लीग वालों को भी मन्त्रिमण्डल मे स्थान दे दिया होता तो यह ऊधम न मचता।

महायुद्ध

यह परिस्थिति भी अधिक समय तक नहीं चली। शीघ्र ही ३ सितम्बर सन् १९३९ को युद्ध की घोषणा हो गई। भारत की ओर से भी धुरीराष्ट्रों के विरुद्ध युद्ध-घोषणा कर दी गई।

कांग्रेस को यह बात खटकी कि बिना भारतीयों की सहमति के भारत को युद्धाग्नि में झोंक दिया गया और युद्ध के उद्देश्यों का भी स्पष्टीकरण नहीं हुआ। कांग्रेस मन्त्रिमण्डलों ने त्यागपत्र दे दिये। ऐसी दशा में सरकार ने मुसलमानों को अपनाने की नीति का अनुकरण किया। जिन्ना साहब को आसमान तक उठाया गया। इस नई तरक्की का स्वयं जिन्ना साहब को भी भान हुआ। मार्च सन् ४० में अपने सभापति की हैसियत से दिये हुये भाषण में वे स्वयं कहते हैं—

'किन्तु जब युद्ध छिड़ा तो वाइसराय वास्तव में लीग से सहायता चाहने लगे। अकस्मात् वाइसराय के मेरी ओर के रुख में परिवर्त्तन हो गया—मुझको वही स्थान मिला जो गान्धी जी को प्राप्त था। यह कांग्रेस हाईकमान्ड पर कठोरतम प्रहार था। मुझे आश्चर्य हुआ कि क्यों अचानक मुझे बढ़ा कर गान्धी जी के बराबर पदवी दी गई। उत्तर था 'अखिल भारतीय मुस्लिम लीग'।

इसी प्रकार एक अन्य स्थान पर वे कहते हैं:—

'यह याद रहेगा कि युद्ध छिड़ने तक वाइसराय ने मेरे बारे में सोचा तक नहीं। उन्हें केवल गान्धी का ध्यान रहता था। . . वाइसराय ने इसके पहले मेरी ओर कभी ध्यान भी नहीं दिया'। इस प्रकार जब जिन्ना साहब को अपनी महत्ता का मद चढ़ा तथा उन्हें यह विश्वास हो गया कि सरकार का सहयोग उन्हें प्राप्त है तब ही उन्होंने मार्च सन् ४० के लीग के लाहौर अधिवेशन में पाकिस्तान की मांग पेश की।

अपने २७ मई सन् ४० के वक्तव्य में उन्होंने कहा कि कांग्रेस वाले जब यह कहते हैं कि वे सरकार को ऐसी परि-

स्थिति मे सत्याग्रह प्रारम्भ कर परेशान नहीं करना चाहते तो इसका वास्तविक श्रेय मुस्लिम लीग को है। कांग्रेस को लीग के विरोध के कारण विवश होकर जो कुछ करना पड़ रहा है उस पर ही वह सुयश कमाना चाहती है। 'ऐसी परिस्थिति मे ब्रिटिश सरकार को मुस्लिम नेतृत्व मे विश्वास दिखाना चाहिये। ऐसा करने के अनेक मार्ग है। विश्वास करने वाले मित्रो की भांति हमारी पूरी सहायता मॉगना चाहिये। और हम भी चूकेगे नहीं।' इसके अर्थ तथा लक्ष्य स्पष्ट ही है। पहली जून सन् ४० को लीग की ओर से वाइसराय से कुछ मॉगें की गई जो कि संक्षेप मे इस प्रकार है।

(१) ब्रिटिश सरकार को लीग का पाकिस्तान भारत के सारे मुसलमानो की मॉग के रूप मे स्वीकार करना चाहिए।

(२) यह स्वीकार कर लेना चाहिये कि लीग भारत के सारे मुसलमानों की प्रतिनिधि संस्था है और उसको अधिकार है कि भारत के विधान में होने वाले भावी परिवर्त्तनों में मुसलमानो की ओर से अनुमति दे या विरोध कर उन्हें रोक दे।

(३) कांग्रेस लीग की भांति एक साम्प्रदायिक संस्था मानी जानी चाहिए।

(४) दो राष्ट्रों के सिद्धांत के आधार पर लीग को वाइसराय की काउन्सिल तथा अन्य प्रतिनिधि संस्थाओं मे वही प्रतिनिधित्व प्राप्त हो जो कि हिन्दुओं को प्राप्त है।

(५) इन संस्थाओं के मुसलमान सदस्य लीग द्वारा नामज़द होने चाहिये। (श्री कुलकरिणी—इज़ पाकिस्तान नेसेसरी)।

इन माँगों का सार तत्त्व वास्तव में सरकार के उस वर्ष के अगस्त के वक्तव्य ने स्वीकार कर लिया, जिसका कि प्रधान अंश इस प्रकार था :—

'भारतवर्ष के भावी विधान की प्रत्येक योजना के सम्बंध में सबसे अधिक ध्यान अल्प संख्यकों का रक्खा जायगा। यह पहले ही स्पष्ट किया जा चुका है कि मेरे गत अक्तूबर के वक्तव्य में सन् ३५ के बिधान के किसी भाग पर, या नीति तथा योजनाओं पर जिन पर कि वह आश्रित है पुनर्विचार का निषेध नहीं है। ब्रिटिश सरकार का यह उत्तारदायित्व कि पुनर्विचार में अल्पमतो के विचारों को पूर्ण महत्ता प्राप्त होनी चाहिये, भी स्पष्ट किया जा चुका है। यह कहने की आवश्यकता नहीं कि ब्रिटिश सरकार की अब भी वही नीति है। यह भी कहने की आवश्यकता नहीं कि वह भारत की शांति तथा हितरक्षा के अपने वर्त्तमान उत्तारदायित्व को ऐसी किसी भी शासन सत्ता को नहीं दे सकती जिसके अधिकार का भारतीय राष्ट्रीय क्षेत्र के बड़े तथा शक्तिशाली सङ्गठनों द्वारा निषेध किया जाय। न वह ऐसे शासन को स्वीकार करने के लिये उन्हें विवश करने में सहयोग देगी।'

इससे मुस्लिम लीग के हाथ में भारत की राजनैतिक उन्नति में ब्रेक लगाने का अधिकार आ गया। मुस्लिम लीग की ओर से इसके उत्तर में जो वक्तव्य निकाला गया उसमें सन्तोष की भावना व्यक्ति की गई। मि० अमेरी ने तो जिन्ना साहब

को स्पष्ट तथा भारत के मुसलमानों का प्रतिनिधि स्वीकार कर लिया। इस गतिरोध का नतीजा यह हुआ कि कजर्वेटिवों को बहाना मिल गया। भारत के स्वाधीनता मार्ग मे एक बड़ा रोड़ा अटक गया। भारत की उन्नति रुक गई। हाँ वाइसराय की काउन्सिल मे अवश्य भारतीय करण की दृष्टि से कुछ परिवर्त्तन हुआ। लीग नेता सर नून भी उसमे शामिल कर लिये गये।

क्रिप्स प्रस्ताव

यह समय गत्यवरोध के लिये उचित नहीं था। योरोपीय महायुद्ध तो जोरो पर था ही पूर्व में भी स्थिति नाजुक हो गई थी जापानियो ने मलाया को और ब्रह्मा के थोड़े भाग को विजय कर लिया था। १५ फरवरी को सिगापुर अंग्रेजो के हाथ से निकल गया। ७ मार्च को अंग्रेजों ने रंगून खाली कर दिया। यह संसार को भली भांति विदित था कि कांग्रेस अंग्रेजो का साथ हृदय से नहीं दे रही है और यदि ब्रिटिश सरकार भारत की राजनैतिक पार्टियों विशेषतया कांग्रेस की सद्भावनाएं प्राप्त कर ले तो भारतीय युद्ध प्रयत्न मे पर्याप्त मात्रा मे वृद्धि हो सकती है। ब्रिटिश सरकार के ऊपर चारों ओर से दबाव पड़ा। उधर अंग्रेजों के भारतीय साम्राज्य के लिए पहली बार सङ्कट उत्पन्न हुआ। कांग्रेस के असहयोग के कारण यह तक निश्चित नहीं था कि भारतीय जनता जापानी आक्रमण का सामना करेगी या नहीं। कहीं सरकार से असहयोग होने के कारण भारतवर्ष भी मलाया और ब्रह्मा की भांति आसानी से जापानियों के हाथ मे न

पड़ जाय। विवश होकर ११ मार्च को प्रधान मंत्री श्री चर्चिल ने पर्लियामेंट में अपना इरादा जाहिर किया और शीघ्र ही सर स्ट्रैफोर्ड क्रिप्स एक नई योजना लेकर भारत के लिये रवाना हुये। भारतीयों को इस समय ब्रिटेन से बहुत कुछ आशा थी। किन्तु क्रिप्स-प्रस्ताव ज्ञात होने पर भारतीय जनता को निराश होना पड़ा। युद्ध के समय के लिये भारतीयों को कोई विशेष अधिकार नही दिये गये थे। फिर उसमें एक प्रकार से पाकिस्तान की मॉग भी स्वीकार कर ली गई थी जो कि मुस्लिम लीग को छोड़ कर सभी भारतीयों को अस्वीकार थी। वल्कि मुस्लिम लीग ने भी क्रिप्स प्रस्ताव अस्वीकार कर दिया क्योंकि उसमें पाकिस्तान की मॉग पूर्णतया स्वीकार नहीं की गई थी। क्रिप्स योजना पर मुस्लिम लीग को कार्य समिति के ६ अप्रैल सन् ४२ के प्रस्ताव का तत्सम्बन्धी अंश यह है :—

'घोषणा के मस्विदे में भारतीय संघ से अलग रहने के अधिकार की जो गुंजाइश रक्खी गई है, संभवतः वह भारत-विभाजन के लिये मुसलमानों की जोरदार मांग का परिणाम है। किन्तु जो तरीका निर्धारित कियागया है वह कथित उद्देश्य को विफल करने वाला है। क्योंकि अलग रहने का अधिकार वर्त्तमान प्रान्ता को दिया गया है जो किसी तर्क संगत आधार पर [illegible] किन्त समय समय पर शासन सम्बन्धी सुविधा की [illegible]ष्टि से बनाए गए हैं।'

वास्तविक प्रश्नों की उपेक्षा करके और प्रान्तों की प्रादेशिक सीमाओं पर आवश्यकता से अधिक ज़ोर देकर, जो कि ब्रिटिश

नीति और शासन सम्बन्धी विभाजन के संयोग मात्र हैं, भारत की समस्या को हल करने की कोशिश ही गलत है।'

मुस्लिम बहुमत वाले प्रान्तों में प्रस्तावित जनमत संग्रह के सम्बन्ध में यह निर्धारित किया गया है कि अकेले मुसलमानों की नहीं बल्कि प्रान्त की समस्त बालिग़ जनता की राय ली जायगी। यह मुसलमानों को उनके स्वयं सिद्ध आत्मनिर्णय के अधिकार से वंचित करना है।

'अतः मुस्लिम लीग ब्रिटिश सरकार से अविलम्ब स्पष्ट घोषणा करने को कहती है कि वह अखिल भारतीय मुस्लिम लीग के सन् १६४० के लाहौर प्रस्ताव में निर्धारित आधारभूत सिद्धान्तों के अनुसार मुसलमानों के लिये पाकिस्तान की योजना स्वीकार करती है और उसे कार्यान्वित करेगी।

इसके विपरीत कांग्रेस कार्यसमित के प्रस्ताव का तत्सबन्धी अंश इस प्रकार है:—

'किसी प्रान्त के सम्मिलित न होने के नये सिद्धान्त को पहले से ही स्वीकार कर लेना भी भारत की एकता की भावना पर एक कठोर आघात है तथा यह झगड़े की जड़ सिद्ध होगा। जिससे कि प्रान्तों में गड़बड़ बढ़ने की संभावना है और देशी राज्यों के भारतीय संघ में सम्मिलित होने में और भी बाधा पड़ सकती है। कांग्रेस का नाता भारत की स्वतंत्रता तथा एकता से है। उस एकता को तोड़ना विशेष कर आज कल के संसार में जब कि प्रत्येक व्यक्ति बड़े से बड़े संघ स्थापित करने की सोच रहा है, सब सम्बन्धित व्यक्तियों के लिये हानिकर सिद्ध होगा। इस बात का विचार ही अति कष्टदायक है। फिर भी यह कमेटी किसी प्रदेश के लोगों को

उनकी घोषित तथा स्पष्ट इच्छा के विरुद्ध भारतीय संघ में जबरदस्ती रखने की बात नहीं सोच सकती। इस सिद्धान्त को मानते हुये भी यह कमेटी इस बात का अनुभव करती है कि ऐसी परिस्थिति लाने का प्रत्यक प्रयत्न करना चाहिये जिससे कि विभिन्न समुदाय एक समान तथा परस्पर सहयोगी राष्ट्रीय जीवन का विकास कर सकें। इस सिद्धांत के मानने के स्वतः यह अर्थ हो जाते हैं कि ऐसे कोई परिवर्त्तन नहीं होने चाहिये जिससे नई समस्याएँ उठ खड़ी हों और उस प्रदेश विशेष में रहने वाले विशेष दलों से जबर्दस्ती की जाय। देश के प्रत्येक भूभाग को भारतीय सङ्घ में अधिक से अधिक सम्भव स्वशासन जो कि राष्ट्रीय राज्य की स्थिति के विरुद्ध न हो, प्राप्त हो। ब्रिटिश युद्ध-कालीन मंत्रि-मण्डल ने जो प्रस्ताव बनाया है वह सङ्घ की स्थापना के प्रारम्भ में ही विभाजन करने के प्रयत्नों को प्रोत्साहन देकर आगे बढ़ायेगा और इस प्रकार उस समय विरोध उत्पन्न करेगा जब कि अधिकाधिक सहयोग तथा सदभावनाओं की आवश्यकता होगी। सम्भवतः यह प्रस्ताव एक साम्प्रदायिक माँग को पूरा करने के लिये बनाया गया है, किन्तु इसके और भी नतीजे निकलेंगे। यह विविध सम्प्रदायों को राजनैतिक क्षेत्र में प्रतिक्रियावादी होने तथा जागृति के विरोधी दलों को ऊधम मचाने और जनता का प्रधान समस्याओं की ओर से फेरने की ओर अग्रसर करेगा।'

इसी आधार पर हिन्दू महासभा ने कुछ और कड़े शब्दों में क्रिप्स प्रस्ताव का विरोध किया :—

'भारत एक तथा अविभाज्य है यह हिन्दू-महासभा का मूल सिद्धांत है।..... भारतीय सङ्घ से निकलने का अधिकार

साम्प्रदायिक तथा वर्गीय वैर को जन्म देगा। सम्मिलित न होने वाले प्रान्तों को पाकिस्तान संघ जो वनाने का अधिकार दिया गया है वह, मुसलमानों के पाकिस्तान और पठानिस्तान के आन्दोलनो को, जिनमे कि अफगानिस्तान तथा अन्य मुस्लिम राष्ट्रों से मिल जाने की धमकी भी शामिल है, देखते हुये, भारत की सुरक्षा तथा एकता में एक महान् विघ्न है। और इससे देश मे गृहयुद्ध छिड़ जाने की आशंका है .. ।'

सिक्खोंने भी विभाजन का तीव्र विरोध किया 'पंजाब के अखिल भारतीय संघ से अलग किए जाने का हम प्रत्येक संभव उपाय से विरोध करेगे। हम अपनी मातृभूमि को उन लोगों के अनुग्रह पर कभी न छोड़ेगे जो उसे अपना नहीं मानते।'

इसी प्रकार मोमीन कान्फ्रेन्स, देशीराज्य परिषद, दलित वर्ग तथा अनेक नेताओं ने इसका विरोध किया। फलतः भारत की राजनैतिक स्थितिमें फिर गत्यविरोध होगया। हाँ उसी वर्ष अगस्त में वाइसराय की काउन्सिल में फिर कुछ भारतीयकरण हुआ।

अगस्त आन्दोलन

कांग्रेस के लिए इस स्थिति को सहन करना असंभव था। फलतः अखिल भारतवर्षीय कांग्रेस कमेटी का अगस्त प्रस्ताव पास हुआ। दूसरे ही क्षण कांग्रेस के सारे नेता गिरफ्तार कर लिए गए। जनता मे तीव्र विरोधाग्नि प्रज्वलित हो उठी। भारत के एक कोने से दूसरे कोने तक बिजली सी चमक गई। नेतृत्व के अभाव मे आजादी की दीवानी जनता को जहाँ जो सूझा वही उसने किया। कहीं रेल की पटरी हटाई गई तो कहीं

तार काटे गए। कहीं स्टेशन जलाये गये और कही डाकखाने। यातायात के सारे साधन अस्त व्यस्त होगए। देश में भूचाल सा आगया। सरकार आशंका से पागल हो उठी। हजारों जेलों के अन्दर बन्द किए गए। लाखों कौड़ी कौड़ी को मुह-ताज हो गए। उत्साह का स्थान करुणा और विवशता ने ले लिया। खैर यह भी बात गई गुजरी हो गई। हाँ मुस्लिम लीग ने यह घोषित कर कि मुसलमान इस 'राजद्रोह' में शामिल नहीं, मुसलमानों को सरकार के कोप से रक्षा की। वास्तविकता क्या थी यह उस समय का पूरा इतिहास लिखे जाने पर पता चलेगा।

गान्धी जी ने भारत सरकार से पत्र-व्यवहार किया, किन्तु कांग्रेस को निर्दोष साबित करने की उनकी तमाम कोशिश बेकार हुई। विवश होकर उन्होंने इक्कीस दिन का उपवास करने की ठानी। चारों ओर से रोक थाम के तार आए। किन्तु वहाँ मार्ग निश्चित था। १० फरवरी सन् १६४३ को उपवास प्रारम्भ हो गया। यह सुन कर कि महात्मा जी के स्वास्थ्य की दशा सन्तोषजनक नहीं है जनता भावी आशंका से उद्विग्न हो उठी। देश में त्राहि-त्राहि मच गई। नेताओं से नेतागण मिल रहे थे और गान्धी जी को छोड़ने के लिए सरकार के पास पत्र पर पत्र और तार पर तार पहुँच रहे थे। सब दल के नेताओं की कान्फ्रेन्स बुलाई गई। जिन्ना साहब को भी निमन्त्रण भेजा गया। किन्तु वह तो एक दूसरे राष्ट्र के नाग-रिक थे। उन्हें एक हिन्दुस्तानी हिन्दू से क्या करना था। उत्तर आया 'गान्धी जी के उपवास से उत्पन्न होने वाली परिस्थिति वास्तव में हिन्दू नेताओ के लिए सोच विचार करने तथा उन्हें उचित सलाह देने का विषय है।' यह मानवता का परि-

चय है। और इससे क्या कान्फ्रेन्स रुक जाती! ... सरकार ने इन पुकारों की कोई सुनवाई नहीं की। भारत के सौभाग्य से गान्धी जी का व्रत पूर्ण हुआ। देश ने सन्तोश की साँस ली।

गान्धी जी के दिन जेल की चहारदीवारी के भीतर ही बीतने लगे। इस बीच मे राष्ट्र के अनेक नेताओने समझौते के अपने सुझाव पेश किए। किन्तु कोई नतीजा नहीं निकला। अन्त में महात्मा गान्धी जून सन् ४४ मे अस्वस्थ होने के कारण रिहा कर दिए गए। जेल से निकलते ही उन्हें हिन्दू मुस्लिम समझौते की पड़ी।

गान्धी-जिन्ना वार्तालाप

अप्रैल १९४३ में दिल्ली में मुस्लिम लीग के वार्षिक अधिवेशन मे भाषण देते हुए श्री जिन्ना ने कहा:—

यदि गान्धी जी मुस्लिम लोग के साथ वास्तव में समझौता करने के इच्छुक हैं तो मुझसे बढ़ कर इसका कोई स्वागत न करेगा......यदि गान्धी जी की ऐसी इच्छा है तो ऐसी कौनसी बात है जो उन्हें मुझे लिखने से रोक सकती है? कोन उन्हें ऐसा करने से रोक सकता है? वाइसराय के पास जाने से क्या लाभ है? यह सरकार इस देश में चाहे जितनी मजबूत हो, मैं यह नहीं मान सकता कि यदि गांधी जी मुझे पत्र भेजेंगे तो वह उसे रोकने की हिम्मत करेगी। यदि ऐसा पत्र रोका गया तो वह वास्तव में एक गम्भीर बात होगी।

उक्त कथन को 'डान' में पढ़ कर गान्धी जी ने ६ मई सन्-४३ को श्री जिन्ना को कारावास से एक पत्र लिखा जिसमें कि

पारस्परिक सम्मिलन का प्रस्ताव किया गया। किन्तु सरकार ने यह पत्र रोक दिया। इसके सम्बन्ध में भारत सरकार की २६ मई की विज्ञप्ति में कहा गया:—'सरकार एक ऐसे आदमी को राजनैतिक पत्रव्यवहार की अथवा सम्पर्क कायम करने की सुविधा देने को तैयार नहीं है जिसे एक गैरकानूनी सामूहिक आन्दोलन को जन्म देने के लिए नजरबन्द किया गया है'।

इस पर पत्रों में जिन्ना साहब के उक्त कथन पर छींटा-कसी हुई। किन्तु श्री जिन्ना ने अपनी बचत का उपाय ढूंढ़ निकालने का असफल प्रयत्न किया। अपने वक्तव्य की व्याख्या करते हुए तथा कुछ रोष तथा खिझलाहट व्यक्त करते हुए वे लिखते हैं :—

'गान्धी जी के इस प्रयत्न का एक ही अर्थ लगाया जा सकता है कि वह मुस्लिम लीग को सरकार से भिड़ाना चाहते हैं, ताकि उनकी रिहाई में सहायता मिले और उसके बाद वे स्वेच्छानुसार काम कर सकें' आदि आदि।

यह दोषारोपण कितने बे-सिर-पैर का है यह स्वयं व्यक्त है।

कहने का तात्पर्य यह कि उस समय गांधी-जिन्ना-वार्ता प्रारम्भ न हो सकी, और गांधी जी को उस समय तक के लिये रुकना पड़ा जब कि वे जेल से छूटे।

इधर श्री राजा जी की योजना को महात्मा जी मार्च सन् ४३ में ही स्वीकार कर चुके थे। अतः उसी को लेकर श्री राजा जी ने ८ अप्रैल सन ४४ को श्री जिन्ना से सन्धि-चर्चा प्रारम्भ की। किन्तु इसका कोई नतीजा नहीं निकला।

अन्त में जब जून '४४ में गांधी जी रिहा कर दिये गये तो फिर गांधी-जिन्ना भेंट का प्रसङ्ग छिड़ा। १७ जुलाई सन

४४ को गांधी जी ने श्री जिन्ना से भेंट करने का प्रस्ताव रक्खा। फलतः महात्मा गांधी और श्री जिन्ना के बीच बम्बई में १४ भेंटे हुईं। पहली भेट ६ सितम्बर को हुई और आखिरी २७ सितम्बर को। (पहले सम्मिलन के लिये १६ अगस्त निश्चित हुई थी जिसे श्री जिन्ना की बीमारी के कारण स्थगित कर देना पड़ा)। बातचीत के साथ ही साथ दोनों के बीच पत्र व्यवहार भी हुआ।

प्रारम्भ मे राजा जी की योजना को आधार बनाकर सन्धि चर्चा चली। किन्तु अपने १४ सितम्बर के पत्र में गान्धी जी श्री जिन्ना को लिखते हैं—'राजा जी की योजना के प्रति आपकी अरुचि को दृष्टि में रखते हुए मैंने फिलहाल उसे अपने दिल से निकाल दिया है और अब मैं पारस्परिक समझौते का एक आधार ढूंढने की आशा से लाहौर-प्रस्ताव पर ही अपना ध्यान केन्द्रित कर रहा हूँ।' इस प्रकार पाकिस्तान वाले प्रस्ताव पर विचार-विनिमय प्रारम्भ हुआ। किन्तु फल उलटा निकला। २२ सितम्बर को गान्धी जी लिखते हैं 'मै दो राष्ट्रो वाले सिद्धान्त के बारे मे जितना अधिक सोचता हूं उतना ही ज्यादा भयप्रद वह मुझे दिखाई देने लगता है।' अन्त मे २४ तारीख के पत्र मे गान्धी जी लिखते है—'मैं यह धारणा लेकर चलता हूँ कि भारत को दो या दो से अधिक राष्ट्र मानकर न चला जाय, बल्कि कई सदस्यों का एक परिवार समझा जाय ..... आपसे सामान्य आधार पर मतभेद रखते हुए भी मैं मुस्लिम लीग के सन् ४० के लाहौर प्रस्ताव मे निहित विभाजन की माँग को अपने आधार पर और नीचे लिखी शर्तो पर मान लेने के लिये कांग्रेस और देश से सिफारिश कर सकता हूँ:—

क्षेत्रों का सीमा निर्धारण कांग्रेस और लीग द्वारा मान्य कमीशन करे। हद बन्दी के क्षेत्रों के निवासियों की इच्छाओं का पता या तो उन क्षेत्रों की वालिग़-जनता के मतों द्वारा अथवा किसी ऐसे अन्य तरीक़े द्वारा लगाया जाय।

यदि विभाजन के पक्ष में मत आएँ तो यह मान लिया जायगा ये क्षेत्र पृथक राज्य कायम कर सकेंगे। आज़ाद होने पर ही भारत में दो सार्वभोम स्वतंत्र-राज्य कायम हो सकते हैं।

विभाजन के बारे में एक सन्धि की जायगी, जिसमें वैदेशिक मामलों, रक्षा, आन्तरिक यातायात, जकात, व्यापार जैसे विषयों के ठीक और सन्तोष-जनक सञ्चालन की योजना की जायगी।

यह विषय अनिवार्य तौर पर सन्धि करने वालों दोनों पक्षों के बीच समान दिलचस्पी के रहेंगे।

ज्यों ही इस समझौते को कांग्रेस और लीग मन्जूर कर लेगी त्योंही दोनों भारत की आजादी प्राप्त करने के लिये समान मार्ग निर्धारित करेंगी।

किन्तु लीग ऐसी किसी प्रत्यक्ष कार्रवाई से अलग रह सकेगी जिसे कांग्रेस शुरू करे और जिसमें भाग लेने के लिये लीग तैयार न हो।'

यह शर्ते श्री जिन्ना को स्वीकार न हुईं। गान्धी जी ने एक बार फिर लिखा—'मैं प्रार्थना करूँगा कि इस प्रस्ताव को ठुक-राने की जिम्मेवारी आप अपने ऊपर न लीजिये। आप इसे लीग कौंसिल में पेश कीजिए। मुझे भी उसमें भाषण देने का

अवसर दीजिए। यदि कौंसिल भी इसे अस्वीकृत करने का निश्चय करे तो आप कौंसिल को सलाह दे कि वह इसे लीग के खुले अधिवेशन के सामने पेश करे। यदि आप मेरी सलाह मान जायँ और मुझे अनुमति दे तो मैं भी खुले अधिवेशन में शामिल होऊँगा और उसमे भाषण दूँगा'। किन्तु यह सब प्रस्ताव जिन्ना द्वारा रद्दकर दिए गए। गान्धी जी का बाहरी व्यक्ति की रहनुमाई का प्रस्ताव जिन्ना साहब ने पहले ही अस्वीकार कर दिया था। गान्धी जी को आखिरकार सचाई स्वीकार करनी पड़ी—'आप बहुत अधिक वैधानिकता का परिचय दे रहे हैं'। अन्त में २७ सितम्बर को सुनाया गया 'मुझे स्वीकार करना पड़ता है कि मैं जिस परिणाम की आशा लगाए था वह नहीं हुआ।'

एक ओर तो जिन्ना साहब ने स्वयं कहा था 'यदि हम समझौता किए बिना ही अलग हो गए तो हम अपनी बुद्धि के दिवालिएपन की घोषणा कर देंगे।' दूसरी ओर गान्धी जी की सत्यता मे भी किसी विचारशील व्यक्ति को सन्देह नहीं हो सकता। फिर आखिर यह प्रयत्न असफल क्यो हुआ? उत्तर स्पष्ट है। जिन्ना साहब अपनी जगह से तिल भर भी हटने के लिये तैयार नहीं थे। और जो कुछ वह माँगते थे वह गांधी जी क्या सारे देश की दृष्टि मे भारतीयों के लिए विनाशकारी था। गान्धी जी यह नहीं मानते कि भारत के मुसलमान एक अलग राष्ट्र हैं। वह यह भी नहीं मानते कि अकेले मुसलमानो को आत्म-निर्णय का अधिकार है। उनकी दृष्टि से 'लीग के स्वीकृत महत्त्व के बावजूद इस बात का स्पष्ट प्रमाण होना चाहिए कि.. प्रस्ताव से सम्बन्धित व्यक्ति वास्तव में बटवारा चाहते हैं।' फिर यह मानते हुए भी कि लीग मुसलमानों

की प्रधान प्रतिनिधि संस्था है, वे जिन्ना साहब का यह दावा स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं कि 'मुस्लिम लीग ही मुस्लिम भारत की एक मात्र साधिकार एवं प्रतिनिधिक संस्था है।' फिर रक्षा आदि सामान्य हितों की ओर भी गान्धी जी का ध्यान अधिक है और हिन्दुस्तान तथा पाकिस्तान का पूर्ण-सम्बन्ध-विच्छेद उन्हें हितकर प्रतीत नहीं होता। गान्धी जी स्वयं २८ सितम्बर की प्रेस कान्फ्रेन्स में कहते हैं—'मैं कहता हूँ कि दो राष्ट्रों की कल्पना को एक ओर रखकर यदि मैं लीग की माँग के अनुसार भारत के विभाजन का सिद्धान्त स्वीकार कर सकता हूँ तो श्री जिन्ना जी को यह मान लेना चाहिए; किन्तु दुर्भाग्यवश इसी प्रसंग पर हम को अलग होना पड़ा।' वास्तविकता यह है कि श्री जिन्ना जानते हैं कि जनमत संग्रह पर किसी भी प्रान्त में पाकिस्तान योजना का समर्थन नहीं होगा।' फिर एक बाधा और थी। वह यह कि गान्धी जी जिन्ना साहब से किसी पार्टी के प्रतिनिधि की हैसियत से नहीं बल्कि व्यक्तिगतरूप से मिल रहे थे। श्री जिन्ना को यह बात खटकती थी। वे स्वयं कहते हैं—'यदि कोई समझौता हो गया तो आप व्यक्तिगत दृष्टि से कांग्रेस और देश से इसकी सिफारिश कर देंगे लेकिन इससे मै लीग के प्रधान की हैसियत से बँध जाऊँगा।' सारांश यह कि हिन्दू-मुस्लिम समझौते की आशा पर फिर पानी पड़ गया।

देसाई-लियाकत समझौता

कुछ समय बाद जनता में यह चर्चा फैली कि श्री भूला भाई देसाई तथा अखिल भारतीय मुस्लिम लीग के प्रधानमन्त्री

नवाबजादा लियाकत अलीखॉ में परस्पर अस्थाई केन्द्रीय सरकार 'बनाने के सम्बन्ध मे समझौता हो गया है। किन्तु वास्तविकता क्या थी यह अभी तक स्पष्ट नहीं हुआ है। नवाबजादा लियाकत अली ने अपनी एक सितम्बर की विज्ञप्ति मे बताया कि वे श्री भूला भाई देसाई के प्रस्ताव मात्र थे। मुस्लिम लीग के प्रधान मन्त्री की हैसियत से उन्होने उन पर कभी कोई सम्मति नहीं दी। जो कुछ सम्मति उन्होंने दी वह व्यक्तिगत रूप में और वह भी स्वीकृति के रूप में नहीं। उनका कथन है कि उन्होने केवल यह कहा कि यह प्रस्ताव कांग्रेस-लीग समझौते की वार्ता का आधार बनाया जा सकता है। उनके अनुसार प्रस्ताव की दो प्रतियॉ तैयार की गईं। एक पर नवाब जादा ने हस्ताक्षर कर श्री देसाई को दे दी और दूसरी श्री देसाइ ने अपने हस्ताक्षर कर नवाबजादा को। देसाईजी का कथन है कि वह वास्तव में समझौते के रुप में था जिस पर वे दोनों एक मत हो गए थे। संभवत' नवाबजादा ने जिन्ना साहब से भी विचार विनिमय किया था और देसाई जी ने महात्मा गान्धी से। जो कुछ भी हो नवावजादा के अस्वीकार कर देने पर वर्त्तमान स्थिति असहमति की ही है, समझौते की नहीं।

वे प्रस्ताव इस प्रकार हैं :—

'कांग्रेस और मुस्लिम लीग इस बात पर सहमत हैं कि वे केन्द्र मे अस्थाई सरकार बनाने में शामिल होंगी। इस प्रकार की सरकार का निर्माण इस ढङ्ग से होगा :—

(अ) कांग्रेस और लीग द्वारा बराबर संख्या में नामजद किये गये व्यक्ति (नामजद किए लोगों के लिए यह आवश्यक नहीं है कि

वे केन्द्रीय व्यवस्थापिका सभा के मेम्बर हों)।

(ब) अल्प संख्यक सम्प्रदायों के प्रतिनिधि (खास कर परिगणित जातियों और सिक्खों के)।

(स) प्रधान-सेनापति।

सरकार का निर्माण गवर्नमेंट आफ इण्डिया एक्ट के ढाँचे के अन्दर ही होगा और उसी के अन्दर वह काम करेगी। पर यह समझा जाता है कि यदि मंत्रि-मण्डल किसी कानून को एसेम्बली द्वारा पास नहीं करा सकता तो वह उस कानून को गवर्नर-जनरल के विशेषाधिकार से जारी नहीं करेगा।

कांग्रेस और लीग इस बात पर सहमत है कि यदि इस प्रकार की अस्थाई सरकार बन जाय तो उसका पहला काम कांग्रेस की वर्किंग कमेटी के मेम्बरों को रिहा कराना होगा।

इस उद्देश्य की पूर्त्ति के लिये जो प्रयत्न किये जायँगे वे फिलहाल इस प्रकार होंगे :—

उपरोक्त समझौते के आधार पर कोई ऐसा तरीका निकाला जाना चाहिए कि वाइसराय यह सुझाव रक्खें कि वे कांग्रेस और मुस्लिम लीग के बीच समझौते के आधार पर केन्द्र में अस्थाई सरकार बनाना चाहते हैं और जब वाइसराय मि० जिन्ना या श्री देसाई को एक साथ या अलग-अलग बुलावें तो ये तजवीजें सामने रक्खी जायँगी और यह कहा जायगा कि वे सरकार के निर्माण में शामिल होने को तैयार हैं।

दूसरा कदम यह होगा कि प्रांतो से धारा ६३ उठा ली जायगी और मिश्रित सरकार के ढङ्ग पर यथासम्भव शीघ्र प्रांतीय सरकारे बनाई जायँ ।'

दोनों पक्ष कहाँ तक सहमत थे यह बात तो भविष्य ही निश्चित करेगा किन्तु इन प्रस्तावो और वेवल योजना में इतना सादृश्य देखकर यह अवश्य कहना पड़ेगा कि संभवतः दूसरा पहले के आधार पर बना है—यद्यपि दोनो में महान् सैद्धांतिक भेद है। अतः यह समझौता (?) महत्त्व से हीन नहीं।

वेवल योजना

अप्रैल सन् ४५ के समाप्त होते-होते योरीपीय महायुद्ध समाप्त हो गया। मित्र राष्ट्रों का ध्यान भारत की ओर गया। सेन फ्रान्सिस्को ऐसे अन्तरष्ट्रिीय सम्मेलन में भारत का प्रश्न उठाया गया। श्री विजय लक्ष्मी पण्डित के अमेरिका मे प्रचार का अच्छा प्रभाव पड़ा। प्रेसीडेन्ट रूजवेल्ट के प्रतिनिधि श्री फिलिप्स भारतीय परिस्थिति की वास्तविकता को बहुत कुछ समझ ही गए थे। दूसरी ओर पूर्व मे युद्ध के जोर पकड़ने की संभावना थी। भारत से और भी अधिक सहायता और सहयोग की आवश्यकता थी। लार्ड वेवल भी भारतीय जनता से कुछ सहानुभूति रखते ही थे। फिर, चुनाव करीब आजाने के कारण टोरीदल को भी जनता की सहानुहाभूति की आवश्यकता थी। इसमे कौन सा कारण वेवल प्रस्तावों के लिए कितना जुम्मेवार है यह हम नहीं कह सकते। वेवल साहब काफी समय तक इंगलैंड मे रह कर सम्राट् की सरकार से मन्त्रणा करने के उपरान्त भारत आए और १४ जून सन्

१९४५ को उन्होंने वर्त्तमान जिच दूर करने और भारत को स्वशासन की ओर बढ़ाने की अपनी चिर प्रतीक्षित योजना को भारतीय नेताओं के समक्ष उपस्थित करते हुए कहा:—

'यह कोई वैधानिक समझौता कराने या थोपने का प्रयत्न नहीं है... . ...आज भारत में सामने लाभ उठाने के बड़े बड़े अवसर और हल किए जाने को बड़ी बड़ी समस्याएं उपस्थित हैं, जिनके लिये सब दलों के प्रमुख व्यक्तियों का समान प्रयत्न अपेक्षित है। इसलिए सम्राट की सरकार के पूर्ण समर्थन सहित मैंने राजनैतिक दलों की अधिक प्रतिनिधित्वपूर्ण नई शासन परिषद् बनाने के लिए, केन्द्र और भारतीय राजनीति के सभी भारतीय नेताओं को मुझ से परामर्श करने के लिए आमन्त्रित करने का प्रस्ताव पास किया है। प्रस्तावित नई परिषद् मुख्य जातियों की प्रतिनिधि होगी। जिसमें सवर्ण हिन्दुओं और मुसलमानों का अनुपात बराबर होगा। यदि यह बन सकी तो इसे मौजूदा विधान के आधीन काम करना होगा किन्तु वाइसराय और प्रधान सेनापति को छोड़ कर जो अपना युद्ध सदस्य पद कायम रक्खेंगे यह पूर्णतया भारतीयों की परिषद् होगी। यह भी प्रस्तावित है कि वैदेशिक मामलों का विभाग, जो अब तक वाइसराय के आधीन रहा है, वह—जहाँ तक कि ब्रिटिश सरकार का सम्बन्ध है—परिषद के एक भारतीय सदस्य को सौंप दिया जाय।'

अपने वक्तव्य में वाइसराय ने यह भी स्पष्ट कर दिया कि यह परिशद अस्थाई होगी और अन्तिम वैधानिक निर्णय पर

इसका कोई असर न पड़ेगा। सदस्यों आदि की संख्या २५ तारीख़ को शिमला मे प्रारम्भ होने वाली प्रस्तावित नेताओं की कांफ्रेन्स करेगी। इस प्रकार बनाई गई परिषद् के निम्न-लिखित उद्देश्य होंगे :—

(१) जापान की पूर्ण पराजय तक अधिकतम शक्ति के साथ युद्ध संचालन।

(२) नए विधान के बनाने और अमल मे लाने तक युद्धोत्तर पुनर्निर्माण के सभी कामो को भुगताना।

(३) भावी विधान की रूप-रेखाओं पर विचार करना।

इन घोषणा के साथ ही वाइसराय ने कांग्रेस कार्य-समिति के सदस्यों के छोड़े जाने की आज्ञा दे दी और अगस्त '४२ की अशांति के फल-स्वरूप नजरबन्द किए गए लोगो की रिहाई का मसला नई केन्द्रीय और प्रांतीय सरकारों पर छोड़ दिया।

इस सम्मेलन में सम्मिलित होने के लिए लीग की ओर से श्री जिन्ना को बुलाया गया। कांग्रेस की ओर से आने के लिए गांधी जी को निमन्त्रण-पत्र भेजा गया। किन्तु स्वयं गाधी जी तथा कांग्रेस वालो के आपत्ति करने पर गांधी जी के स्थान पर भारतीय राष्ट्रीय काग्रेस के सभापति मौलाना अबुल कलाम आजाद को बुलाया गया। कांग्रेस ने 'सवर्ण हिन्दू' शब्द के प्रयोग पर भी आपत्ति की और अपनी स्थिति स्पष्ट करनी चाही कि वह हिन्दुओं की ही नहीं सारे देश की राष्ट्रीयता की प्रतिनिधि है। ईसाई एंग्लो-इंडियन तथा अनेकों मुसलमान संस्थाओं ने कांग्रेस के इस दावे का

समर्थन किया। अन्त में कांग्रेस ने जो प्रस्तावित सदस्यों की सूची दी, कहते हैं, उसमें अनेक धर्मों के लोग सम्मिलित थे।

महासभा ने मुसलमानों को सवर्ण हिन्दुओं के बराबर प्रतिनिधित्व दिये जाने का घोर विरोध किया। उसका कहना था कि मुसलमानों से तीनगुनी संख्या में होने पर भी सवर्ण हिन्दुओं को उनके ही बराबर स्थान क्यों दिए जाएंगे। स्थान-स्थान पर घोर विरोध प्रदर्शित करने के लिए सभाएं बुलाई गईं।

किन्तु जिन्ना साहब को यह प्रस्ताव भी स्वीकार न हुए। २६ जून को पहली बार शिमला में पत्रकारों के सामने प्रस्तावित परिषद में हिन्दू मुसलमानों की समानता के सम्बन्ध में अपना रुख स्पष्ट करते हुए उन्होंने कहा—'शासन परिषद में समानता के सम्बन्ध में हमें कोई मुगालता नहीं है। क्योंकि मुसलमानों का प्रस्तावित कोटा एक तिहाई से अधिक नहीं होगा और इस तरह समूची परिषद में मुसलनान एक तिहाई की अल्प-संख्या में होंगे। इसके विपरीत जहाँ हिन्दू-मुसलमानों के बराबर होंगे वहाँ तफसीली जातियाँ और सिक्खों और न जाने किस-किस जाति या जातियों के प्रतिनिधि होंगे, क्योंकि नई शासन परिषद की सदस्य संख्या का निश्चित होना अभी बाकी ही है। इस तरह किसी भी महत्त्व-पूर्ण मामले में कांग्रेस आसानी से तफसीली जातियों और सिक्खों के समर्थन की आशा कर सकती है। जहाँ तक सिक्खों के प्रतिनिधित्व का सम्बन्ध है वे भारत के विभाजन के खिलाफ हैं तथा उनका राजनैतिक आदर्श और ध्येय वही है जो कांग्रेस का। फिर वाइसराय और प्रधान सेनापति दो अंग्रेज

सदस्य होंगे। अतः परिपद् के इस सङ्गठन से कांग्रेस को सहज ही बहुमत प्राप्त हो जायगा। मुसलमानो पर बहुमत के बलपर कांग्रेस द्वरा अपने निर्णय थोपे जाने पर कोई पर्याप्त बचाव नहीं है'।

कहने का तात्पर्य यह है कि जिन्ना साहब के अनुसार मुसलमान मानों गुड़की एक डली है जिसमे हर कोई मुँह मारना चाहेगा। लीग से सब न्याय की आशा कर सकते हैं किन्तु लीग बेचारी किसी से नहीं। असंभव सिद्धान्तों के निष्कर्ष भी बड़े अजीब होते है। जिन्ना साहब ने यह जानते हुए कि यह सरकार अस्थाई होगी १६४० के लाहौर प्रस्ताव की दुहाई देकर उसे कार्यायिन्त करने के निमित्त मुसलमानों के लिए आत्मनिर्णय के अधिकार की गारन्टी भी चाही। और साथ मे अपनी अनेक माँगे पेश की। लीग के ६६ प्रतिशत मुसलमानों के प्रतिनिधित्व का दावा किया गया। और इसे आधार पर मुसलमानों की सारी सीटे लीग के नामजद व्यक्तियों द्वारा भरी जाने की माँग की। लीग यूनियनिस्ट पार्टी तक को एक सीट देने को तैयार नहीं हुई। वाइसराय से यह वचन माँगा गया कि यह मुस्लिम लीगी सदस्य परिषद् के जिस निर्णय के विरुद्ध हों उसे वाइसराय अपने विशेपाधिकार से अस्वीकृत कर दे।

यह शर्तें स्पष्टतया ही अस्वीकार्य थीं। हिन्दू मुसलमानों तथा अन्य अल्प संख्यकों ने एक स्वर से इनका विरोध किया। जिन्ना साहब के प्रतिनिधित्व सम्बधी दावे का खडन बंगाल के भूतपूर्व प्रधान मन्त्री श्री फजलुलहक (जिन्हें अनुचित और अनाधिकार पूर्ण ढग से हटाकर भूतपूर्व गवर्नर ने लीगी

मन्त्रिमण्डल कायम किया। शिया मजलिस के प्रतिनिधि तथा केन्द्रीय एसेम्बली के सदस्य श्री हुसेन भाई लाल जी, बंगाल काउन्सिल के सदस्य प्रो० हुमायूँ कबीर, आज़ाद मुस्लिम संघ के अध्यक्ष सर अब्दुल हलीम गज़नवी, बिहार के भूतपूर्व प्रधान मन्त्री श्री यूनस, तथा जमीयतउल उलेमाए-हिन्द, मुस्लिम मजलिस, मोमिन कान्फ्रेन्स, अन्जुमन-ए-वतन बलूचिस्तान, मोमिन अन्सारी कान्फ्रेन्स, मजलिस ए कुरेशी और बिहार की मुस्लिम इन्डिपेन्डेन्ट पार्टी, बंगाल की कृषक प्रजा पार्टी आदि ने खुले तौर पर विरोध किया। वाइसराय ने भी लीग की शर्तें स्वीकार नहीं कीं और १४ जुलाई को सम्मेलन सभी दलों की सहमति के अभाव में विफल घोषित कर दिया गया। नतीजा यह हुआ कि देश की जिस करुण-दशा को देखकर कॉंग्रेस जिन प्रस्तावों को स्वीकार करने के लिए उद्यत हो गई थी लीग की अड़ के कारण देश उसी में रहने के लिए छोड़ दिया गया। अपने वक्तव्य में वाइसराय ने सम्मेलन की असफलता का उत्तरदायित्व अपने ऊपर लिया। हम कह सकते हैं कि यदि किसी अर्थ में वाइसराय उत्तरदाई हैं तो इसी अर्थ में कि उन्होने लीग को भारत के उन्नति मार्ग में रोड़ा बनने दिया।

मज़दूर दल की विजय और उसके बाद

इसी बीच में ब्रिटिश पार्लियामेंट का नव निर्वाचन हुआ। मज़दूर दल की एक बड़े बहुमत से विजय हुई। श्री एटली प्रधान मन्त्री बने। लीग को आश्चर्य हुआ किन्तु इससे क्या! देश में कुछ नई आशा का संचार हुआ। व्यवस्थापक सभाओं के पुनर्निर्वाचन की आज्ञा हुई। वेवल साहब लन्दन सरकार

से परामर्श करने गए। वहाँ से लौटकर उन्होंने अपनी घोषणा की जिसमें कहा कि चुनाव के बाद विभिन्न प्रान्तों तथा देशी रियासतों के प्रतिनिधियों से सलाह की जायगी और उस समय क्रिप्स प्रस्तावों के आधार पर अथवा अन्य किसी योजना के आधार पर समझौता करने का प्रयत्न किया जायगा। साथ ही एक ऐसी शासन परिषद् का निर्माण होगा जिसे प्रमुख भारतीय दलों का समर्थन प्राप्त हो।

इस समय भारत का भविष्य बहुत कुछ चुनावों पर निर्भर है। यह निश्चित है कि लीग अपने ६६ प्रतिशत प्रतिनिधित्व के दावे को साबित नहीं कर पावेगी। ऐसी परिस्थिति में क्या होगा यह समय स्वयं बतला देगा।

———

पाकिस्तान का विकास

हिन्दू-मुस्लिम विरोध के इतिहास का अध्ययन करने के बाद अब हम ज़रा यह भी देखले कि 'पाकिस्तान' शब्द तथा विभाजन के विचार का प्रारम्भ कहाँ से हुआ। जिन्ना साहब ने तो यह समझाने की कोशिश की है कि 'पाकिस्तान' शब्द हिन्दुओं ने मूर्खतावश मुसलमानों को दिया जिसे उन्होंने धन्यवाद सहित अपना लिया। समर्थन में वह यह कहते हैं कि लीग के सन् ४० के लाहौर प्रस्ताव में पाकिस्तान शब्द का प्रयोग नहीं किया गया था। इस कथन की सत्यता का निराकरण तो इसी बात से हो जाता है कि सन् ४० के पूर्व भी यह शब्द मुसलमानों की ज़बान पर सुना जाता था। सन् १६३३ में गोल-मेज़ कान्फ्रेन्स के अवसर पर मुस्लिम विद्यार्थीयों के एक दल ने, जिसमें मौ० अस्लाम खाँ, रहमत अली, शेखमोहम्मद सादिक़ और इनायत उल्लाखाँ सम्मिलित थे, एक पर्चा बाँटा था जिसमें 'पाकिस्तान' शब्द का प्रयोग किया गया था। और इसका अर्थ पंजाब, अफगान प्रान्त सीमान्त, काश्मीर, सिंध तथा विलोचिस्तान बतलाया गया था। यह 'पाकिस्तान ही आगे चल कर पाकिस्तान हो गया।

जहाँ तक विभाजन के विचार का सम्बन्ध है हम कह सकते हैं कि वह सन् १९१९ में भी वर्त्तमान था। प्रो० ए० बेरीडेल कीथ ने अपने भारत के वैधानिक इतिहास (The Constitutional History of India) मे मुसलमानो की एक ऐसी विचारधारा का उल्लेख किया है जो कि भारत के उत्तर-पश्चिम प्रदेशों में, जहाँ कि मुसलमान बहुमत मे हैं अफगानिस्तान के ढग पर एक अलग मुस्लिम राज्य कायम करने के पक्ष मे थी। किन्तु उस समय यह विचार-धारा जोर न पकड़ सकी। सन् १९३० मे प्रसिद्ध मुसलमान कवि सर मोहम्मद इकबाल ने, जो अखिल भारतीय मुस्लिम लीग के प्रयाग अधिवेशन के सभापति थे कहा 'मैं पंजाब, उत्तर पश्चिम सीमाप्रान्त, सिन्ध और बिलोचिस्तान को एक राज्य मे सम्मिलित देखना चाहता हूँ। ब्रिटिश साम्राज्य के अन्तर्गत या बाहर एक उत्तर पश्चिम भारतीय मुस्लिम राज्य की स्थापना मुझे कम से कम उत्तर पश्चिम के मुसलमानों के भाग्य में बदी मालूम होती है। सन् १९३३ मे जैसा कि पहले कहा जा चुका है इस विचारधारा का प्रचार इगलैड में गोलमेज कान्फ्रेन्स के अवसर पर किया गया। इस समय की मांग मे काश्मीर राज्य भी सम्मिलित था। १९३५ में श्री रहमत अली ने एक और पर्चा निकाला जिसमे कि इस विचारधारा की और व्याख्या की गई थी। इस बार बगाल भी पाकिस्तान मे सम्मिलित हो गया। इस समय से इस मांग का काफी प्रचार हुआ। अन्त में मार्च सन् १९४० में मुस्लिम लीग के अधिवेशन में एक प्रस्ताव स्वीकार हुआ जिसमें भारत के विभाजन की मांग की गई। यही प्रस्ताव 'पाकिस्तान प्रस्ताव'

के नाम से प्रसिद्ध हुआ। लीग की विभाजन की मांग वाला अंश इस प्रकार था:—

अखिल भारतीय मुस्लिम लीग के अधिवेशन की यह निश्चित राय है कि ऐसी कोई वैधानिक योजना इस देश में कार्यान्वित नहीं हो सकती और न मुसलमानों को स्वीकार हो सकती है जिसे निम्नलिखित आधारभूत सिद्धान्तों के आधार पर न बनाया जाय—भौगोलिक दृष्टि से पास पड़ने वाली इकाइयों की ऐसी हदबन्दी हो कि आवश्यक प्रदेशिक हेर फेर के बाद जहाँ मुसलमान बहुसंख्या मे हों, जैसा कि भारत के उत्तर पश्चिमी और पूर्वी भागों में है, वहाँ उन्हें मिलाकर स्वाधीन राज्यों की स्थापना की जाय, जिनमें शामिल होने वाली इकाइयाँ स्वशासन भोगी और सार्वभौम रहेंगी। इन इकाइयो और प्रदेशों में रहने वाले अल्प संख्यकों के धार्मिक सांस्कृतिक, आर्थिक राजनैतिक, शासन-संबंधी तथा अन्य अधिकारो एवं हितों की रक्षा के लिए उनसे सलाह करके पर्याप्त कारण और आदेशात्मक संरक्षणों की विधान में निश्चित रूप से व्यवस्था की जायगी। इसी प्रकार हिन्दुस्तान के अन्य भागो में जहाँ मुसलमान अल्पसंख्या में हैं उनके तथा अन्य अल्प-संख्यकों के धार्मिक, सांस्कृतिक, आर्थिक, राजनैतिक, शासन सम्बन्धी तथा अन्य अधिकारों एवं हितों की रक्षा के लिये उनके साथ परामर्श करके पर्याप्त, कारगर और आदेशात्मक संरक्षणों की विधान में निश्चित व्यवस्था की जायगी। यह अधिवेशन कार्य-समिति को अधिकार देता है कि वह इन मूल सिद्धांतों के अनुसार विधान की योजना बनावें, जिसमें सम्बन्धित क्षेत्र अन्त में रक्षा, वैदेशिक मामले

यातायात, जकात और अन्य आवश्यक विषयों में पूरी सत्ता ग्रहण कर सकें।

तब से अब तक लीग इसी सिद्धान्त पर जमी हुई है। किन्तु न तो आज तक उन प्रदेशों की पूर्ण व्याख्या की गई जो एक अलग राज्य कायम करेंगे और न लीग की ओर से कोई विधान ही देखने में आया। क्यों? यह हम आगे चल कर देखेंगे।

—:*:—

पाकिस्तान के प्रस्तावक और समर्थक

अब देखना यह है कि पाकिस्तान के प्रस्तावक तथा समर्थक कौन हैं। जहाँ तक माँगने का प्रश्न है हम कह सकते हैं कि यह माँग मुस्लिम लीग पार्टी की ओर से पेश की गई है। किन्तु साथ ही लीग का यह भी दावा है कि मुस्लिम लीग मुस्लिम-भारत की एक मात्र साधिकार एवं प्रतिनिधिक संस्था है। मुस्लिम लीग मुलसानों की एक मात्र संस्था नहीं है-- यह तो स्पष्ट ही है। जमायत, मजलिस, शिया कांफ्रेन्स, अहरार, खाकसार, खुदाई खिदमतगार आदि अनेक मुस्लिम संस्थाएँ हैं। यह भी एकमात्र मुसलमानों की प्रतिनिधि हैं। इनका दृष्टिकोण तथा इनकी नीति लीग से भिन्न है। इनका भी अधिक जनता पर अपना प्रभाव है और इन्हें भी मुस्लिम जनता का समर्थन प्राप्त है। यूनियनिस्ट और कांग्रेस में भी मुसलमानों की कमी नहीं है। मुस्लिम-जनता इनके साथ नहीं है यह भी कोई भी व्यक्ति जिसे ईश्वर ने ज्ञान दिया है स्वीकार नहीं कर सकता। मुस्लिम लीग उन प्रांतों में भी अपना मंत्रि-मण्डल नहीं बना सकी जिनमें कि मुसमलान बहुसंख्या में रहते हैं। किसी भी प्रांत में स्वतन्त्र लीगी मंत्रि-मण्डल कार्य नहीं कर सका है। बङ्गाल आसाम और सिंध तीनों प्रांतों मे लीग नेसम्मिलित मन्त्रि-मण्डल बनाये जिनमें

कि उसे सहायता के लिये हिन्दुओं ही नहीं अपितु अन्य मुस्लिम पार्टियो की ओर ताकना पड़ा है। बङ्गाल प्रान्त में लीगी मन्त्रि-मण्डल सदस्यों के अविश्वास के कारण समाप्त हो गया। क्या इन अविश्वास करने वालों में पर्याप्त संख्या मुसलमानो की नहीं थी। सीमा-प्रान्त में जहाँ कि ५० में ३६ सीटें मुसलमानों के लिए हैं, और प्रायः आबादी मुसलमानों की ही है वहाँ भी लीग मन्त्रि-मण्डल कार्य न कर सका और अन्त में कॉग्रेसी मन्त्रि-मण्डल की स्थापना करनी पड़ी। क्या यह इस बात का सूचक नहीं कि बहुत से मुसलमान लीग में विश्वास ही नही नहीं करते अपितु अविश्वास भी प्रकट करते है। पंजाब मे लीगी मन्त्रि-मण्डल टूटने की बात तो दूर रही वह कभी बन तक नहीं पाया और सरदार खिज़र हयात खाँ तिवाना ने बड़े आत्मविश्वास के साथ लीग की शर्त्तों को ठुकरा दिया। ऐसी परिस्थिति में भी लीग यदि मुसलमानों की एक मात्र प्रतिनिधि सस्था होने का दावा करती है तो वह झूठ नहीं तो क्या है? अधिक से अधिक यही माना जा सकता है कि लीग मुसलमानों की सबसे बड़ी प्रतिनिधि सस्था है और लीग यदि अपनी माँग पर अड़ती है और भारत की उन्नति में बाधा डालती है तो इस विश्वास पर कि भारत की स्वतंत्रता के पुजारी शायद आजादी की प्राप्ति की खातिर इस झूठे दावे को भी स्वीकार कर ले। किन्तु बार बार कहने या किसी संस्था विशेष के स्वीकार कर लेने मात्र से राष्ट्रीय विचारों के मुसलनान लीग से सहमत हैं यह नहीं माना जा सकता। वे फिर भी लीग की साम्प्रदायिकता के विरुद्ध आवाज़ उठाएँगे और राष्ट्रीयता का परिचय देकर अपने धर्म तथा देश का सिर ऊँचा करेंगे। इस सबसे यही सिद्ध होता

है कि पाकिस्तान की मॉग मुसलमानों के एक वर्ग विशेष की मांग है।

अब समर्थकों की ओर ध्यान दीजिए। 'इज़ पाकिस्तान नेसेसरी' में दक्षिण के श्री रामा स्वामी नैकर का उल्लेख है। यह दक्षिणी महाशय लीग की मॉग का तो समर्थन करते ही हैं साथ ही दक्षिण में द्राविड़िस्तान की मॉग पेश करते हैं। इनके साथ में ही यह धमकी लगी हुई है कि यदि उनकी मॉग स्वीकार न हुई तो जिन्ना साहब की पाकिस्तान की मॉग का समर्थन करने के लिए वे अपने बन्धुवर्ग सहित अपने पूर्वजों के धर्म का परित्याग कर देंगे। ऐसे व्यक्तियों के धर्मपरित्याग कर देने से धर्म की क्या हानि होगी यह तो हम नहीं कह सकते किन्तु इतना अवश्य कहेंगे कि वे फिर भी फ़ायदे में नहीं रहेंगे।

इसी ढंग पर कभी-कभी कुछ सिक्खों ने किन्तु केवल तर्क की ख़ातिर यह कहा है कि यदि जिन्ना साहब सिक्खिस्तान स्वीकार करने की कृपा करें तो वे पाकिस्तान मान सकते हैं। किन्तु यह केवल पाकिस्तान का मजाक उड़ाना है, इसका समर्थन करना नहीं।

एक हिन्दू नेता ने पाकिस्तान का समर्थन अवश्य किया है—वे हैं डा० अम्बेडकर। अपनी 'नोट्स ऑन पाकिस्तान' नामक पुस्तक में उन्होंने अलग मुस्लिम राज्य कायम होने के पक्ष में मत दिया है। किन्तु इस मतदान के पीछे दो बातें स्पष्ट झलकती हैं। एक तो यह कि मुसलमानों की जिद के कारण उनसे समझौता होना असंभव है। ऐसी परिस्थिति में उनके सम्मिलित रहते भारत की उन्नति होना भी कठिन

विभाजन के विरुद्ध मत

गान्धी जी जिन्ना साहब को लिखते हैं:—

'हमारी बहस जितनी आगे बढ़ती है आपका चित्र मुझे उतना ही अधिक भयकर प्रतीत होता है। यदि वह सच्चा होता तो अतीव आकर्षक होता। लेकिन मेरी शका बढ़ रही है कि यह सर्वथा बनावटी है। मैं इतिहास में ऐसा कोई उदाहरण नहीं पाता जो यह प्रकट करता हो कि धर्म बदलने वालो के किसी गिरोह और उसकी सन्तान ने अपने मूल पूर्वजो से अलग एक राष्ट्र होने का दावा किया हो। यदि इस्लाम के आगमन के पहले भारत एक राष्ट्र था तो इसे अब भी एक ही रहना चाहिए—भले ही उसके बहुत से बच्चों ने अपना धर्म परिवर्त्तन कर लिया हो।'

'आपने राष्ट्रीयता की एक नई कसौटी का आविष्कार किया मालूम होता है। यदि मैं इसे स्वीकार कर लूँ तो मुझे और कई दावों को मानना पड़ेगा जिसका परिणाम यह होगा कि मुझे हल न होने वाली समस्या का सामना करना होगा।'

'मैं इस पत्र को लिखता हुआ प्रस्ताव पर होने वाले अमल की बात सोचता हूँ तो समस्त भारत के लिए विनाश के सिवाय कुछ नहीं देखता।'

'मैं दो राष्ट्रों वाले सिद्धान्त के बारे में जितना अधिक सोचता हूँ उतना ही ज्यादा भयप्रद वह मुझे दिखाई देने लगता है........मैं इस प्रस्ताव को स्वीकार करने में असमर्थ हूँ कि भारत के मुसलमान शेष भारतवासियों से भिन्न हैं। केवल इस प्रस्ताव पर बार बार जोर देने से ही यह सिद्ध नहीं हो जाता। ऐसे प्रस्ताव को स्वीकार करने के परिणाम बहुत खतरनाक होंगे। एक बार इस सिद्धान्त के स्वीकार कर लिए जाने पर भारत को अनेक भागों में विभाजित करने के दावों का कोई अन्त नहीं रह जायगा और जिसका अर्थ भारत का विनाश होगा।'

(गान्धी—जिन्ना वार्तालाप)

अखिल भारतीय मोमिन कान्फ्रेन्स की कार्यसमिति ने क्रिप्स प्रस्ताव को अस्वीकार करते हुए विभाजन के विरुद्ध अपना मत प्रदर्शित किया:—

कार्यसमिति का यह दृढ़ मन्तव्य है कि सब भारतीयों के हितों के लिए और विशेष रूप से भारतीय मुसलमानों के हित के लिए भारतवर्ष की एकता तथा अविभाज्यता अत्यन्त आवश्यक है। फिर भी कमेटी इस बात को नहीं भूल सकती कि मुसलमानों का एक दल यह सोच कर कि यह उन प्रान्तों में जहाँ कि मुसलमान बहुमत में हैं, मुसलमानों के लिए अहितकर होगा, इस देश में एकतंत्र केन्द्रीय शासन नहीं चाहता है। किन्तु इस कमेटी को यह जानते हुए कि इन मुसलमानों का भय तथा उनकी आशंकाएँ इस देश में रहने वाले समुदायों के पारस्परिक अविश्वास तथा सन्देह का फल है, पूर्ण विश्वास है कि इस प्रकार का साम्प्रदायिक मत-

के प्रत्येक भाग में शासन प्रबन्ध सम्बन्धी, आर्थिक तथा अन्य राष्ट्रीय कार्यों के प्रत्येक क्षेत्र में उसके अधिकार भारतीय राष्ट्र के अन्य सदस्यों के बराबर हैं।'

१४ अगस्त सन् ४४ को त्रावणकोर की व्यवस्थापक सभा मे भाषण देते हुए वहाँ के दीवान सर रमास्वामी अय्यर कहते हैं :—

'भारतवर्ष का एक भी देशी राज्य भारत को पाकिस्तान, हिन्दुस्तान, द्राविड़िस्तान या अन्य किन्हीं स्तानो में विभाजित करने की अनुमति नहीं देगा। इस विचार विनिमय में देशी राज्यों को नहीं भुलाया जा सकता, चाहे ब्रिटिश सरकार हो, चाहे भारत सरकार हो, और चाहे कॉंग्रेस तथा मुस्लिम लीग हो। अनेक अग्रगामी देशी राज्य कई दिशाओं में ब्रिटिश भारत से भी आगे बढ़े हुए हैं। अभी और आगे उन्नति करना शेष हो सकता है, किन्तु कुछ भी हो देशी राज्य देश प्रेम से हीन नहीं हैं। उन्हें शासन-प्रबन्ध सम्बन्धी पर्याप्त अनुभव है और वे साम्प्रदायिक तथा जातीय आधार पर स्थित परस्पर विरोधी सार्वभौम शासन-सत्ताओं के प्रति विभाजित राजभक्ति की सम्मति नहीं दे सकते।'

———

पाकिस्तानी विचार-धारा

पहली बात जो हमें देखने में आती है वह यह कि लीग स्पष्ट व्यक्ति एवं सीमित माँगे स्वीकार कराने की अपेक्षा अव्यक्त सिद्धान्त स्वीकार कराना अधिक पसन्द करती है क्योंकि वे क्रियात्मक रूप में असीम हो सकते हैं। उदाहरणार्थ लीग ने दो राष्ट्रों को सिद्धान्त प्रतिपादित करने की भरसक कोशिश की है। हिन्दू-मुस्लिम विरोध अधिक से अधिक सिद्ध करने का प्रयत्न किया गया है। हिन्दू-मुसलमान जितने की विपरीत मार्ग पर चलेंगे उतना ही दो राष्ट्रों के सिद्धान्त का समर्थन आसान होगा और जितना ही उनमें परस्पर विरोध बढ़ेगा उतनी ही इस बात की सत्यता प्रतिपादित होगी कि हिन्दू-मुसलमान परस्पर मेल से नहीं रह सकते, और इस प्रकार पाकिस्तान की माँग का समर्थन होगा। जब कोई जरा-सी बात होती है तो लीग उसे तूल देकर और यदि कोई बात न हो तो लीग उसे बना कर जनता के सामने रखती है जिससे कि हिन्दू-मुस्लिम विरोध और भी अधिक बढ़े। कांग्रेस मन्त्रि मण्डलों के मुसलमानों पर अत्याचार की गाथाएँ इसी प्रकार गढ़ी गई हैं। गान्धी जी के उपवास के समय जब जिन्ना साहब ने सर्व-दल सम्मेलन में जाने से इन्कार किया और यह कहा

कि यह बात तो हिन्दुओं से सम्बन्ध रखती है तो शायद वह विश्व के समक्ष यह उपस्थित करना चाहते थे कि हिन्दू मुसलमानों में इतना भी प्रेम नहीं है जितना कि एक मानव में दूसरे मानव के प्रति मानवता के नाते होना चाहिए। ससार देख ले कि देश का बड़े से बड़ा नेता मर जाए किन्तु क्योंकि वह हिन्दू है इसलिये मुसलमान नेताओ के कान पर जूँ तक न रेंगेगी। खैर, इस दो राष्ट्र के सिद्धान्त के स्वीकार हो जाने का अर्थ होगा सदैव के लिए हिन्दू मुसलमान विरोध स्थायी हो जाय। स्वाभाविक फल होगा राष्ट्रीय विचारो और भावनाओ का अन्त तथा साम्प्रदायिकता का जोर। या दूसरे शब्दो मे कांग्रेस तथा राष्ट्रीय मुस्लिम पार्टियो की इतिश्री और लीग की वृद्धि।

लीग के मुसलमानों के एकमात्र प्रतिनिधित्व के दावे को स्वीकार करने मे भी यही लक्ष्य है। वास्तव मे किसी बात की सत्यता स्वीकार अथवा अस्वीकार होने पर आश्रित नहीं है। किन्तु इस समय देश की परिस्थिति ऐसी है कि लीग के इस दावे को स्वीकार कर लेने पर यह दावा वास्तव में सत्य हो जायगा। यदि कांग्रेस इस बात को स्वीकार कर लेती है तो लीग का एक बहुत बड़ा कार्य पूर्ण हो जायगा। एक ओर तो कांग्रेस हिन्दुओं मात्र की संस्था रह जायगी। आज लीग जो कांग्रेस को हिन्दू-मात्र की संस्था बताती है वह इस प्रकार स्वयं स्वीकार कर लेगी। कांग्रेस के कार्यो में साम्प्रदायिकता का दोषारोपण सिद्ध हो जायगा। राष्ट्रीय हिन्दू-मुसलमानों का जो कांग्रेस मे शामिल है कोई स्थान नहीं रह जायगा। कांग्रेस के बाहर के राष्ट्री मुसलमान ऐसी परिस्थिति मे अधिक समय तक

ठहर सकेंगे इसमें सन्देह है। यद्यपि यह बात सत्य है कि बहुत से मुसलमानों ने राष्ट्रीयता और देश-प्रेम का परिचय देकर अपने धर्म और देश का मस्तक ऊँचा किया है किन्तु फिर भी वास्तविकता का ध्यान रखते हुये और उनकी तत्कालीन अल्प संख्या के ख्याल से हमें यह कहना पड़ता है। बल्कि हो सकता है कि कांग्रेस की इस बात से असन्तुष्ट होकर बहुत से राष्ट्रीय मुसलमान कांग्रेस के विरुद्ध हो जायँ। तात्पर्य यह है कि जिस कार्य को लीग १०० वर्ष में भी स्वयं नहीं कर सकती कांग्रेस की जरा सी भूल कर देने पर कुछ ही दिनों में वही कार्य शान के साथ पूरा हो जायगा। इसके अतिरिक्त जब लीग मुस्लिम-राष्ट्र की एक मात्र प्रतिनिधि संस्था हो जायगी और हिन्दुओं मात्र की प्रतिनिधि रह जायगी तो उसका बराबरी का दावा भी सच्चा हो जायगा और कांग्रेस को या देश को उस समय की लीग की मांगें आँख मीच कर माननी पड़ेंगी।

आत्म-निर्णय का सिद्धान्त स्वीकार कर ही लिया जाता है तो लीग का एक छत्र राज्य स्थापित हो जायगा। लीग की प्रत्येक मांग मुसलमानों का आत्म-निर्णय होगी। फिर इस सिद्धांत के अनुसार गैरमुस्लिमों को मुस्लिम-राष्ट्र की माँगों में दखल देने का अधिकार होगा ही नही। तब तो लीग की मांगे किसी भी सीमा तक बढ़ सकती हैं। आज लीग एक करोड़ों व्यक्तियों को बिना उनकी अनुमति लिये बल्कि उनकी इच्छा के विरुद्ध, भारत से अलग करने को कहती है तो कल कुछ और भी अधिक अन्यायपूर्ण एवं अव्यावहारिक माँग रख सकती है। यदि पाकिस्तान की माँग स्पष्ट कर दी गई होती तो आगे मांगें बढ़ाने का अवकाश न रह जाता

किन्तु जब तक कि लीग सिद्धांतों की स्वीकृति मांगती है—ऐसे सिद्धांतों की जिनकी व्याख्या नहीं की गई है—तब तक मांगें बढ़ाने के लिये मैदान खुला पड़ा है। काश्मीर को पाकिस्तान में सम्मिलित करने की मांग की ही जा चुकी है। हैदराबाद में आसमानिस्तान बनेगा क्योंकि वह मुस्लिम राज्य है। उसके लिए एक बन्दरगाह भी चाहिये अतः मद्रास हैदराबाद में शामिल हो। कुछ हिस्से की जरूरत पाकिस्तान को आर्थिक दृष्टि से स्वतन्त्र बनाने के लिये होगी और कुछ की बङ्गाल और पंजाब की सीमाएँ मिलाने के लिये। दोनों राज्यो के बीच 'कारिडर' चाहिये ही। हिन्दुस्तान के मुसलमानो की रक्षा के लिये ही न जाने किस-किस बात की आवश्यकता होगी। सक्षेप मे लीग के मांगें दिन प्रतिदिन बढ़ती जायँगी।

धर्म की आड़ लेकर मुस्लिम हृदयों को अपने पक्ष में करना भी लीग खूब जानती है। वह मुसलमानों के हृदय पर प्रभाव डालना चाहती है, मस्तिष्क पर नहीं। यदि व्याख्या आदि के द्वारा व तर्क-शक्ति की सहायता से कोई बात समझाई जाने की कोशिश की जाती है तो दूसरे पक्ष की भी विचार शक्ति उत्तेजित होतो है। उस समय मनुष्य मानने के पहले स्वय समझना चाहता है। पाकिस्तान ऐसा तर्क हीन सिद्धान्त किसी विचारशील व्यक्ति को न्यायपूर्ण जचेगा इसमे सन्देह है। अतः यह स्वाभाविक है कि लीग विचारशक्ति को उत्तेजित न करके मुसलमानों के हृदयो से क्रीड़ा करके उनकी तर्क शक्ति को और भी कुण्ठित करना चाहती है। सफलता की दृष्टि से भी हृदय को ही प्रभावित करना ठीक भी जॅचता है। यों तो जीवन मे मस्तिष्क ही सोच विचार करता है किंतु करने

न करने की बात का सीधा सम्बन्ध हृदय से है। मनुष्य को कार्य करने की ओर अग्रसर हृदय ही करता है। हृदय की आज्ञा पर चल कर मनुष्य ऐसी बहुत सी बातें भी कर बैठता है जिन्हें उसकी बुद्धि हानिकर बताती है और ऐसे काम नहीं करता जो उसके तथा समाज के हित में हैं। मनुष्य प्रेम और घृणा के आवेश में जो कर बैठता है वह सोच विचार कर वह नहीं कर सकता। धर्म की बलवेदी पर आहुति देना धर्म प्रेमियों का ही काम है और मात्रभूमि के चरणों पर प्रान न्योछावर कर देना देश-भक्तों का। कोरे अर्थ-शास्त्र के नियमों के अनुसार देश की लाभ-हानि का हिसाब लगाने वाले तो देश के लिए एक बूंद खून क्या पसीना भी नहीं गिरा सकते। लीग इस बात को अच्छी तरह जानती है। राजनीति का धर्म से अनिवार्य संम्बन्ध जोड़ कर धर्म के नाम पर वोट मांगे जाते हैं। नून साहब का कथन है लीग के विरुद्ध वोट देना इस्लाम का विरोध करना है। धर्म प्राण मुसलमानों को इसलाम ख़तरे में है कह कर धर्म रक्षा के नाम पर पाकिस्तान का समर्थ करने में दत्तचित्त किया जाता है। उनके सामने स्वप्न का संसार रक्खा जाता है—'पाकिस्तान बनेगा—वह पाक लोगों की ही निवास भूमि होगा।' मुस्लिम संस्कृति, सभ्यता, साहित्य आदि का फिर विकास होगा। संसार में इसी प्रकार प्रत्यावर्तन होगा और इस्लाम का डंका दुनिया के एक छोर से दूसरे छोर तक बजेगा—बस पाकिस्तान ले लो। भोली भाली धर्म प्राण जनता को बहकाने के लिए इससे अधिक स्पष्टता की क्या आवश्यकता।

मुसलमानों के स्वाभिमान को उत्तेजित किया जाता है। उनकी उच्चता की दोहाई दी जाती है और अन्य

मतालम्बियों के प्रति घृणा तथा क्रोध उत्पन्न किये जाते हैं। मियाँ फजलुल हक जब वह लीग में थे ऐसे उत्तरदायित्वपूर्ण नेता भो १०वीं शताब्दी के धर्मान्ध की भाँति कहते हैः— 'मुझे अल्लाह के अतिरिक्त किसी का भय नहीं और बिना हाथ पैर हिलाए २२ करोड़ का सामना कर सकता हूँ। मुझे अल्लाह में श्रद्धा है और मुझे अल्लाह में विश्वास है कि उनके बड़ी संख्या में होने पर भी मैं उन्हें दबा सकता हूँ। मुसलमानों का ही भविष्य उज्ज्वल है। काफिर का भविष्य नहीं होता क्योंकि उसका भविष्य अनिश्चित होता है।'

सर ए० एम० के० देहलवी साहब फर्माते हैं: –

'मैं ब्रिटिश सरकार से प्रार्थना करता हूँ कि वे कानून और अमन कायम रखने के प्रयत्न से अपने को जरा अलग रक्खें और हमको कांग्रेस से अल्प-संख्यकों का मसला चन्द हफ्तों में ही इस पार या उस पार निबटाने के लिये छोड़ दे।'

सुल्तान कोट (सिंध) में लीग के अधिवेशन में ही एक कविता पढ़ी गई थी जिसका आशय था—

'पाकिस्तान में इसलाम का एक अलग केन्द्र बने। पाकिस्तान मे हमें गैर मुस्लिम का मुँह नहीं देखना पड़ेगा। मुसलमानों का देश तब ही प्रकाशित हो उठेगा जब कि उसमे मूर्तिपूजक नहीं रहेंगे।' (इज पाकिस्तान नेसेसरी)

इसी प्रकार के अन्य अनेक उदाहरण दिए जा सकते हैं। किंतु इन साम्प्रदायिकता का विस्तार करने वाली बातों को प्रकाशित कर हम राष्ट्रीयता में बाधा नहीं डालना चाहते। 'अल्लाह हो अकबर' के नारे लीग की मीटिंग में कोई भी सुन सकता है।

यही नहीं औरों की युक्तियों का उल्टा सीधा अर्थ करके मुसलमानों को उभाड़ने का प्रयत्न किया जाता है—देखो यह ऐसी चुनौती देते हैं क्या तुम कुछ नहीं कर सकते ?' जिन्ना साहब ने गान्धी जी की असंगतियां दिखाने का प्रयत्न किया है। वह या तो बुद्धिभ्रम का फल है या बुद्धिभ्रम उत्पन्न करने का प्रयत्न। वे लिखते हैं 'गान्धी जी की असंगतियाँ और परस्पर विरोधी बातें एक छोटे से पत्र में इतनी अधिक होती हैं कि उनकी गणना नहीं की जा सकती और पिछले चार सप्ताहों में जो कुछ हुआ है उसने कुल मिलाकर एक चीनी पहेली प्रस्तुत कर दी है। मैं अनेक में से एक उदाहरण दूँगा . जहाँ प्रकटतः मुस्लिम बहुमत है। वहाँ मुसलमानों को पृथक राज्य कायम करने का पूरा अधिकार होना चाहिए। किन्तु यदि इसका यह अर्थ हो कि पूर्णतया सार्वभौम राज्य कायम हो और दोनों के बीच कुछ भी समान न हो तो मैं इसे असंभव प्रस्ताव समझता हूँ। तब इसका अर्थ होगा गृहयुद्ध।......यह देखिए अहिंसा के देवता और भक्त जो खंजर से लड़ लेने की धमकी दे रहे हैं।' इससे अधिक मनमाना अर्थ करने और जनता के अज्ञान का लाभ उठाने का निन्दनीय प्रयत्न शायद ही कहीं देखने में आए।

इन सब बातों में अधिक खटकने वाली बात है लीग की साम्प्रदायिक विद्वेष फैलाने की प्रवृत्ति। यों तो राजनैतिक दल अपनी-अपनी सफलता के लिए नाना भाँति के उपायों का आश्रय लेते हैं और कोई उनकी निन्दा नहीं करता, किन्तु कोई ऐसी बात करना जो कि राष्ट्र के लिए सदैव के लिये घातक सिद्ध हो कभी भी उचित नहीं कहा जा सकता। पहले तो मुसलमान एक अलग राष्ट्र हैं नहीं। फिर यदि उनको थोड़ी

देर के लिए अलग राष्ट्र मान भी लिया जाय तब भी साम्प्रदायिक वैमनस्य फैलाने की यह प्रवृत्ति कभी भी न्याय-सगत नहीं कही जा सकती। चाहे अखड भारत रहे और चाहे पाकिस्तान बने हिन्दू और मुसलमान रहेंगे साथ ही। न तो सारे मुसलमान ही पाकिस्तान में चले जायंगे और न सारे हिन्दू ही हिन्दुस्तान में चले आएँगे। यह दूसरी बात है कि उनके पारस्परिक अनुपात में भेद उत्पन्न हो जाय। ऐसी परिस्थिति में प्रत्येक भारतीय का यह कर्त्तव्य हो जाता है कि वह दूसरों के साथ मिलकर रहना सीखे और यह तब ही सभव है जब कि पारस्परिक प्रेम हो। आप चाहे जितने समझौते कर ले और चाहे जितनी बन्दिशे बांध ले फिर भी जब तक आपके दिल में दूसरे के लिए जगह नहीं है आप उसके साथ शान्तिपूर्वक नहीं रह सकते। यदि हिन्दू और मुसलमान अपने को भाई-भाई नहा समझते हैं, यदि उनके दिल में यह बात जम जाती है कि उन्हें एक दूसरे के विरुद्ध अपने अधिकारो की रक्षा करना है तो कभी भी वे सौहार्द से रह नहीं सकते। फिर जब एक बार यह विरोध की भावना जागृत हो जाती है फिर उसका शान्त होना कठिन हो जाता है। इसलिए साम्प्रदायिक विद्वेप को बढ़ाना प्रथम श्रेणी का देशद्रोह है।

और इस कार्य के लिये आश्रय लिया जाता है धर्म का। धर्म वह वस्तु है जो आत्मा को परमात्मा के समीप ले जाती है। जो मनुष्य को असन्मार्ग से हटाकर सन्मार्ग की ओर प्रेरित करती है। जो यह बताती है कि इस संसार में तुम भले ही अपने पापों को छिपा लो किन्तु उस सर्वव्यापक सर्वशक्तिमान् प्रभु को तुम धोखा नहीं दे सकते और अपने प्रत्येक

कार्य के लिए तुम्हें उसके समक्ष उत्तर देना होगा। जो यह बताती है कि हम सब एक ही परमात्मा की सृष्टि हैं एक ही पिता के पुत्र हैं, परस्पर भाई-भाई हैं। जो यह बताता है कि अन्तिम विजय धर्म एवं न्याय की होती है। असत्य, रिश्वत और चापलूसी ईश्वर के सामने न चल सकेंगी। उसी धर्म को लेकर मनुष्य-मनुष्य में कलह उत्पन्न की जाय। और जो इस दुष्कृत्य में सहायक न हो उसकी निन्दा की जाय।

वर्त्तमान चुनाव में लीग की ओर से जो अनुचित कार्य-वाइयाँ की जा रही हैं उनकी अत्युक्ति नहीं की जा सकती। राष्ट्रीय विचारों के मुसलमान ग़द्दार और काफिर कहे जाते हैं सो तो कहे ही जाते है, उनके ऊपर धूल मिट्टी और ईंटें फेंकना, उनका जनता के समक्ष अनादर करना प्रथम श्रेणी की उद्दंडता एवं कायरता के उदाहरण हैं। लीगी यह नही चाहते कि सत्य बात जनता के समक्ष आए। यदि ऐसा होगा तो उनकी पोल खुल जायगी। यदि यह नहीं है तो क्यों वे राष्ट्रीय मुसलमानों की मीटिंगों में झगड़ा फिसाद उत्पन्न करते हैं। राष्ट्रीय मुसलमान तो ऐसा नहीं करते।

इससे एक बात और भी सूचित होती है। वह है पाकि-स्तान का भावी स्वरूप। आज जब लीग के हाथ में राजकीय शक्ति नहीं है तब तो वह अपने विरुद्ध बोलने वालों के साथ इस प्रकार का व्यवहार करती है और जब शासन-सत्ता उसके हाथ में आ जायगी। तब तो शायद हिटलर की ही नीति अपनाई जायगी। इन धर्म और न्याय की दुहाई देने वालों ने स्वयं भी धर्म और न्याय सीखा है इसमें सन्देह है।

——:*:——

अखण्ड भारत

अब प्रश्न उठता है पाकिस्तान की व्याख्या तथा उसके सैद्धांतिक औचित्य का। पाकिस्तान तथा उसके आधार-भूत सिद्धांत कभी समन्वित एवं विशद रूप में जनता के समक्ष उपस्थित नहीं किये गये। ऐसी परिस्थिति में समय-समय पर जो कुछ लीग की ओर से कहा गया है उसी का विवेचन कर हम निम्नलिखित सिद्धान्तों पर पहुँचते हैं:—

(१) भारत एक अखण्ड देश नहीं बल्कि उप-महाद्वीप है।

(२) हिन्दू और मुसलमान दो भिन्न राष्ट्र हैं।

(३) भिन्न राष्ट्र होने के नाते मुसलमानों को आत्म-निर्णय का जन्म सिद्ध अधिकार है। इसमें कोई और दखल नहीं दे सकता।

(४) मुस्लिम लीग ही मुस्लिम भारत की एक मात्र साधिकार एवं प्रतिनिधिक संस्था है।

(५) मुसलमानों की ओर से लीग पाकिस्तान मांगती है।

(६) यही हिन्दू-मुस्लिम समस्या का एक मात्र सुलझाव है।

इनमें (४) और (५) का हम पहले ही निराकरण कर चुके हैं।—शेष का अब हम परीक्षण करेंगे।

पहला प्रश्न अखण्ड भारत का है। लीग के अनुसार आज जो भारत एक अखण्ड दिखाई दे रहा है वह ब्रिटिश शासन की देन है। उसकी एकता का और कोई ऐतिहासिक आधार नहीं। इसके लिये हम यह कह सकते हैं कि यह विश्वास इतिहास के सम्यक् आलोचन पर आश्रित नहीं है। जब से भारत का इतिहास हमें मिलता है तब से ही भारत की अखण्डता सिद्ध है। अशोक के राज्य में करीब करीब सारा भारतवर्ष शामिल था। गुप्तवंश के राजाओं का आधिपत्य भी प्रायः पूरे भारतवर्ष पर था। इसके बाद खिलजी-तुग़लक और मुगल सम्राटों के साम्राज्य की सीमा भी प्रायः सारा भारतवर्ष थी। प्रत्येक शासक सारे भारतवर्ष का सम्राट होने की इच्छा करता था और जब जिस राजा या बादशाह के पास इतनी शक्ति होती तब ही वह सारा भारतवर्ष अपने राज्य में सम्मिलित करने की चेष्टा करता। हाँ, एक बात अवश्य थी। यह ऐक्य जितना मानसिक क्षेत्र में वर्त्तमान था उतना क्रियात्मक रूप में नहीं। यातातात के तीव्रगामी साधनो के अभाव में किसी एक राजवंश का सारे भारतवर्ष पर अपना शासन बनाये रखना दुष्कर था, और स्वभावतः कुछ पीढ़ियों के बाद वह शासन छिन्न-भिन्न हो जाता था। लोगों के कम सम्पर्क में आने के कारण रीति-रिवाज और कायदे-कानून भी एक से नहीं रह सकते थे। किन्तु जब अंग्रेजों का आगमन हुआ तो उन्होंने भारतवर्ष को एक राज्य में सम्मिलित कर दिया। सारे देश में यथा संभव एक से कानून लागू किए। यातायात के तीव्रगामी

साधनों के प्रयोग में आने के कारण भारतवर्ष के लोगों का परस्पर संपर्क वढा। अब सारा भारतवर्ष एक सरकार के मातहत है। राजनैतिक, धार्मिक, सामाजिक आदि जितने भी आन्दोलन होते हैं वे प्राय: देशव्यापी ही होते हैं। यह दूसरी वात है कि उनका प्रभाव किसी स्थान विशेष पर अन्य स्थानों की अपेक्षा अधिक पड़े। आज सारे भारतवर्ष की एक अखिल भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस है, एक हिन्दू महासभा है, एक मुस्लिम लीग है। जमीयत, मजलिस, परिगणित जातियों सव का देशव्यापी स गठन है। क्या यह सब इस बात का सूचक नहीं कि भारतवर्ष एक देश है। केवल पहले जो एकत्त्व कुछ अस्पष्ट था वह अब स्पष्ट होगया है।

भौगोलिक दृष्टि से भी भारत एक इकाई है। उत्तर में हिमालय पर्वत उसे शेष एशिया से अलग करता है, जब कि दक्षिणी भाग मे तीनो ओर समुद्र है। इस प्रकार प्रकृति द्वारा ही भारतवर्ष की सीमाएँ बाँध दी गई हैं। फिर भारतवर्ष के अन्दर ऐसी कोई प्राकृतिक वाधा नहीं हैं जो कि देश के किसी भाग को शेष भाग से अलग कर सके। यदि पजाव को अथवा बंगाल को युक्तप्रान्त से अलग किया जाता है तो इन दोनों के बीच कौनसी प्राकृतिक हदबन्दी होगी। पाकिस्तान और हिन्दुस्तान वालों में यदि पटती नहीं है तो दोनों राज्य अपनी अपनी हजारों मील लम्बी सीमाओं पर सीजफ्रेड और मेजीनो रक्षापंक्तियाँ बनाकर भारत के स्वरूप को विकृत करें-इसके अतिरिक्त उनके पास कौन सा उपाय रह जाता है।

ारत की इस भौगोलिक एकता का अनेक देशी तथा विदेशी विद्वानों द्वारा समर्थन किया गया है। किन्तु हम उन्हें देना अनावश्यक समझते हैं क्योंकि यह तो प्रत्यक्ष प्रमाण होने के

कारण आप्तवचन प्रमाण की अपेक्षा नहीं रखता। कोई भी व्यक्ति भारत का नक़शा उठाकर देख सकता है और उसी निष्कर्ष पर पहुँचेगा।

इसी प्राकृतिक तथा राजनैतिक एकता के आधार पर भारत में यातायात के साधनों का विस्तार हुआ है। ग्रान्ट ट्रंक रोड को ही लीजिये। कलकत्ते से पेशावर तक चली गई है और इसका निर्माण आज से सैकड़ों वर्ष पूर्व हुआ था। रेलों का विस्तार भी किसी प्रान्त की सीमा से बद्ध नहीं है। उदाहरणार्थ बी॰ बी॰ सी॰ आई और जी॰आई॰पी॰ रेलवे, संयुक्त प्रान्त, मध्यप्रान्त तथा बम्बई प्रान्त में अविच्छिन्न रूप से फैली हुई हैं। ई॰ आई॰ आर ने बंगाल और युक्त प्रान्त को एक में बांध दिया है। भारत के विभाजन का अर्थ होगा इन सब साधनों को अस्तव्यस्त और खण्ड-खण्ड कर देना।

व्यापारिक दृष्टि से भी भारत एक इकाई है। युक्तप्रान्त के कपड़ों की दूकानों पर अधिकतर कपड़ा प्रान्त के बाहर का मिलेगा। कानपुर और कलकत्ता के व्यापारी कितने परस्पर संबद्ध है यह वही जान सकता है जो कि इस क्षेत्र से परिचित हो। यदि कलकत्ते के बाज़ारों में हिन्दुस्तानी का इतना अधिक प्रयोग होता है तो इसका कारण युक्तप्रान्त से उसका व्यापारिक सम्बन्ध ही है। यदि बंगाल युक्त-प्रान्त से अलग कर दिया जाता है तो क्या व्यापार की यही सुविधा रह जायगी।

हिन्दुओं के दृष्टि कोण से यदि देखें तो भारत की एकता का प्रतिपादन और भी दृढ़तापूर्वक हो जाता है। हिन्दुओं की आबादी इस देश की आबादी की करीब-करीब तीन चौथाई है। भारत के सुख-दुःख का तीन

चौथाई भाग उन्हें भोगने को मिलता है। सरकार की आय का ३।४ से भी अधिक भाग उन्हीं की जेबों से आता है, और जब कोई विपत्ति आती है तो स्वभावतया उसका कटु अनुभव हिन्दुओं के ही भाग में अधिक आता है। अतः भारत के सम्बन्ध की किसी भी समस्या का कोई भी सुलझाव जो हिन्दू आदर्शो तथा हितो के विरुद्ध है वह भारत की जनता के बहुमत के विरुद्ध है (यह दूसरी बात है कि बहु-संख्यक होने के कारण हिन्दुओं के अधिकार तथा कर्त्तव्य अन्य देशवासियों के अधिकार तथा कर्त्तव्य का ध्यान रखकर निश्चित किए जायँ)। हज़ारों वर्षो के इतिहास में सारा भारतवर्ष हिन्दुओ की निवास-भूमि रहा है। काश्मीर से केप कामोरिन तक, नंगा पर्वत और अमरनाथ से मदूरा और रामेश्वरम् तक, पुरी से द्वारका तक, सारा भारतवर्ष हिन्दुओ की मातृभूमि है। यह मातृभूमि उनकी श्रद्धा, प्रेम और उपासना की पात्री है। वन्दे मातरम् गान भारतमाता के चरणो में उसके पुत्रों की पुष्पांजलि है। भारतभूमि हिन्दुओ की उपास्य देवी है। हिमालय पर्वत उसका उच्च मस्तक है। उस पर स्थित श्वेताभ्रहिम उसका मुकुट है। दक्षिणी महासागर उसके चरणो का प्रक्षालन करता है। उसके वक्षस्थल से जान्हवी और यमुना प्रसृत होकर उसके अंक में स्थित पुत्रों को पयपान कराती हैं। यह वह मातृभूमि है जिसके लिए उसका मस्तक लाख बार झुकता है। वास्तव में उसका देश प्रेम भौतिकता की सीमा को पार कर आत्मिक क्षेत्र मे पहुँच गया है। यह भूमि उस परमपिता की ज्येष्ठ कन्या है। सबसे पहले यहीं पर सृष्टि रचना की गई थी। जब-जब यहाँ पर उत्पात होता है तब-तब भगवान् स्वयं राक्षसो का संहार कर

सात्विक धर्म की स्थापना करते हैं। इसीलिए इस भूमि के निवासी देवताओं तक के धन्यवाद के पात्र हैं (गायन्ति देवाः किल गीतकानि धन्यास्तु ते भारतभूमि भागे); स्वयं देवगण यहाँ जन्म लेने को तरसते हैं। यह जन्मभूमि स्वर्ग से भी श्रेष्ठ है—जननी जन्म भूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी।

एक हिन्दू के लिये चाहे वह यह भी न जानता हो, कि भारतवर्ष का विस्तार कहाँ से कहाँ तक है, सारा भारतवर्ष एक अखण्ड है। ज्ञान पूर्वक अथवा अज्ञान-पूर्वक वह इस एकत्व को स्वीकार करता है। भारत के चार छोरों पर स्थिति चारों धामों की यात्रा उसके धर्म का, विशेष अंग है। एक संयुक्त-प्रांत और बम्बई के निवासी को भी पितृऋण से मुक्त होने के लिये श्राद्ध करने को गया जाना पड़ता है। सात नदियों के जल में अभिषेक उसके लिये पुण्यदायक है। साधारण दैनिक स्नान के समय इन नदियों का स्मरण तक उसके लिये फल-प्रद है। कुभा तथा सुवस्तु का जल, जिनके किनारे वेदों का गान हुआ था पवित्रता से रहित नहीं। एक कृष्ण भक्त बङ्गाली के लिये भी मथुरा वृन्दाबन की रज का कण-कण पुण्य-फल-प्रद है। स्वयं डा० मेकडानल्ड इस बात का समर्थन करते हैं 'भारत और हिन्दुत्व का उसी प्रकार जीवनीय संबंध है जिस प्रकार कि शरीर और आत्मा का।' 'एक हिन्दू अपनी परम्परा तथा धर्म से भारत को केवल एक राजनैतिक इकाई ही नहीं समझता जिसमें स्वाभाविक रूप से एक सारभौम सत्ता होनी चाहिये, अपितु वह उसकी आत्मिक संस्कृति की मूर्त्तिमान् सत्ता है, स्थापना स्थली है, नहीं, नहीं, स्वयं दिव्य जननी है।'

ऐसी दिव्य भारत माता की सेवा पर ही उसके इस लोक और परलोक का निर्माण आश्रित है। उसके लिए जीवन विसर्जित कर देना उसके लिए गर्व की बात है। उसका वह अंग भंग करेगा ? उसके अंग भंग की बात कहना क्या हिन्दू-धर्म पर आक्षेप नहीं है ? क्या भारत का विभाजन करना उसके धर्म पर कुठाराघात नहीं है। एक सहनशील हिन्दू सब कुछ सहन कर सकता है, त्याग का प्रश्न उठने पर सर्वस्व दान कर सकता है किन्तु क्या वह विभाजन की मांग स्वीकार करेगा ?

ऊपर हमने भारत की एकता पर जोर देने का प्रयत्न किया है। किन्तु फिर भी बाहरी दृष्टि से इस एकता को हम बहुत दूर तक नहीं ले जासकते। भाषा, जलवायु, प्रकृति, जाति आदि की दृष्टि से भारत कई समुदायो की सम्मिलन भूमि है। यह हमें स्वीकार करना पड़ेगा कि साधारणतया एक पंजाबी और एक मद्रासी के आकार, वेषभूषा, भाषा स्वभाव में अन्तर है और इन्हीं दृष्टियों से सीमाप्रान्त का एक साधारण निवासी बंगाल के एक साधारण नागरिक से भिन्न, है। किन्तु संसार से कितने ऐसे राष्ट्र हैं जो अपने एक कोने से दूसरे कोने तक पूर्ण एकता का दावा कर सके। क्या पाकिस्तान में इसी प्रकार का भेदभाव नहीं रहेगा। फिर प्रश्न यह है कि क्या इससे पाकिस्तान की मॉग न्यायोचित, युक्ति-युक्त तथा साधिकार सिद्ध हो जाती है। पहले तो यही बात विचारने योग्य है कि जब सीमान्त और बगाल के निवासियों में महान् भेद स्वीकार किया जाता है फिर यह किस सिद्धान्त पर कहा जाता है कि सीमा-प्रान्त और बंगाल दोनों एक पाकिस्तान में सम्मिलित हों। यदि

सीमाप्रान्त और बंगाल एक संघ में सम्मिलित हो सकते हैं तो युक्त प्रान्त जो इनके बीच की कड़ी के समान है क्यों उसी में सम्मिलित नहीं हो सकता हैं। क्या पाकिस्तान में विभिन्न रूपरंग तथा जाति के लोग नहीं होंगे। क्या पाकिस्तान के सारे निवासियों की भाषा एक है, क्या सीमाप्रान्त की पश्तो, पञ्जाब की पूर्वी पंजाबी तथा बंगाल की बंगाली एक ही परिवार की भाषाएं हैं। क्या एक बंगाली के आदर्श तथा उसकी इच्छाएं युक्तप्रान्त वालों की अपेक्षा पंजाबियों अथवा सीमाप्रान्त के निवासियों से अधिक मिलती हैं। क्या पंजाब या सिन्ध के एक प्रान्त में ही अनेक भाषाओं का प्रयोग नहीं होता। क्या पंजाब में उर्दू और गुरुमुखी दोनों लिपियाँ प्रचलित नहीं हैं ? क्या ये दोनों कोई मिलती जुलती लिपियाँ हैं। क्या पंजाब में ही हिन्दू, मुसलमान, और सिक्ख तीनों ही नहीं रहते हैं ? पाकिस्तान को जाने दीजिए। क्या अकेले पंजाब की ही सीमा संसार के अनेक राज्यों से कई गुनी नहीं है ? क्या सीमाप्रान्त तथा पंजाब सदैव से एक राज्य में चले आ रहे हैं ? कहने का तात्पर्य यह है कि भाषा, वेष भूषा, विचारधारा, धर्म इतिहास आदि सब दृष्टियों से पाकिस्तान भी अनेक भेदों की सम्मिलन भूमि होगा। फिर भारतवर्ष के विविध प्रान्तों आदि का भेद दिखाने से यह किस प्रकार सिद्ध होता है कि पाकिस्तान की माँग उचित है। यह निश्चित है कि हर बात में बंगाल पाकिस्तान के अन्य प्रान्तों की अपेक्षा युक्त प्रान्त से अधिक मिलता है। तो क्या इसी आधार पर बंगाल पाकिस्तान में सम्मिलित नहीं किया जायगा ? हाँ इस आधार पर कि वहाँ मुसलमानों का बहुमत है वह पंजाब के साथ पाकिस्तान में सम्मिलित किया जाय तो यह कहना

कि भारत एक अखण्ड देश नहीं है निराधार एवं अनावश्यक है। मुसलमानों के आत्म-निर्णय के आधार पर पाकिस्तान माँगना और बात है और भारत के विस्तार तथा उसकी विभिन्नताओ पर जोर देकर उसके विभाजन की माँग करना और बात है।

यदि सूक्ष्म दृष्टि से देखा जाय तब तो अखण्ड भारत के विरोध के अर्थ है पाकिस्तान का विरोध। मद्रास और सीमा प्रांत भिन्न है—इसका अर्थ हुआ मद्रास के हिन्दू-मुसलमान सीमा प्रान्त के हिन्दू मुसलमानों से भिन्न हैं अथवा मद्रास के मुसलमान सीमा प्रान्त के मुसलमानों से भिन्न है और सीमा प्रान्त के हिन्दू मुसलमान एक हैं। इससे 'मुस्लिम एक अलग राष्ट्र हैं' का विरोध होता है और हिन्दू-मुस्लिम ऐक्य का प्रतिपादन होता है। इससे यह सिद्ध होता है कि सीमा प्रान्त के निवासी एक अलग राष्ट्र हैं। फिर पजाब अथवा बंगाल के एक मुसलमान को सीमा प्रांत के मामले मे दखल देने का क्या अधिकार है। यदि उत्तर पश्चिम प्रदेश के निवासी एक अलग राष्ट्र हैं तो आत्म-निर्णय का अधिकार वहाँ के निवासियों को उस राष्ट्र के सदस्य होने के नाते मिलना चाहिये न कि भारत के मुसलमानों को मुसलमान होने के नाते। या तो पाकिस्तान ही एक राष्ट्र हो सकता है या मुसलमान ही। दोनो एक साथ नहीं (वास्तव मे एक भी नहीं) क्या इस सब का यह अर्थ नहीं निकलता है कि राजा जी की योजना वैज्ञानिक है और पाकिस्तान की तर्क हीन!

—:*:—

दो राष्ट्र

जिन्ना साहब ने १७ सितम्बर सन् ४४ के पत्र में गान्धी जी को लिखा 'हम समझते हैं और कहते हैं कि राष्ट्र की किसी भी व्याख्या या कसौटी से देखिए मुसलमान और हिन्दू यह दो प्रधान राष्ट्र हैं। दस करोड़ की जनसंख्या का हमारा राष्ट्र है। इससे भी बढ़ कर बात यह है कि हमारी अपनी संस्कृति और सभ्यता है, अपनी भाषा और अपना साहित्य है, कला, स्थापत्य, नाम और नाम करण का ढंग, चीज़ों का अपना माप और मूल्यांकन, अपने कानून व नैतिक नियम, रीति रिवाज और पंचांग, इतिहास और परम्पराएँ, अभिरुचियाँ और आकांक्षाएँ हैं। संक्षेप में कहें तो जीवन के बारे में तथा जीवन का हमारा अपना दृष्टि कोण है, और अन्तर्राष्ट्रीय विधान के सब नियमों के अनुसार हम एक राष्ट्र हैं।' इस कथन का तात्पर्य यह है कि हिन्दू और मुस्लिम दो भिन्न-भिन्न राष्ट्र हैं। जो बातें कि राष्ट्रीयता का निर्णय करती हैं वे हिन्दू और मुसलमानों में भिन्न रूप में वर्त्तमान है। किन्तु उनका भेद यहीं तक सीमित नहीं। प्रायः प्रत्येक बात में मुसलमान हिन्दुओं से भिन्न है। इन दोनों बातों का अब हम विवेचन कर सकते हैं।

'क्या मुसलमान एक भिन्न राष्ट्र हैं' यह जानने के लिए पहले आवश्यक है राष्ट्रीयता का अर्थ करने की। राष्ट्र क्या वस्तु है? कौन सी वस्तुएँ एक होने पर व्यक्तिसमुदाय राष्ट्रनाम का अधिकारी होता है। इस सम्बन्ध मे हम यह स्पष्ट कर देना चाहते हैं कि 'राष्ट्र' का निश्चित तथा सर्वसम्मत अर्थ निर्धारित करना कठिन ही नहीं अपितु असंभव है। उदाहरणार्थ 'अन्तर्राष्ट्र' शब्द में 'राष्ट्र' 'राज्य' का पर्यायवाची भी हो सकता है। संसार में ऐसे अनेक राज्य हैं जिनमें एक से अधिक राष्ट्र शामिल हैं किन्तु अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में वे एक ही राष्ट्र हैं। कनेडा में अंग्रेज तथा फ्रैन्च दोनों हैं। उन दोनों के धर्म अधिकतर भिन्न हैं और कुछ समय पूर्व तक आपस में विरोध भी काफी रहता था—जितना भारत के हिन्दु मुसलमानों में है इससे अधिक। किन्तु अन्तर्राष्ट्रीय दृष्टि में कनाडा सदैव एक राष्ट्र रहा। कल यदि पाकिस्तान बन जाता है तो उसमें भी जिन्ना साहब की परिभाषा के हिसाब से अनेक राष्ट्र सम्मिलित होगे। फिर भी अन्तर्राष्ट्रीय दृष्टिमें पाकिस्तान एक ही राष्ट्र होगा।

राष्ट्र और राज्य का सम्बन्ध भी काफी है। प्रायः एक राष्ट्र के सदस्य अपने को एक राज्य में संगठित कर लेते हैं और एक राज्य के व्यक्ति धीरे-धीरे अपने को एक राष्ट्र समझने लगते हैं और उनमें राष्ट्रीयता की भावना का विकास होता है। ससार के अधिकतर देशों को राष्ट्रीयता उस दे के व्यक्तियो का एक राज्य के अन्तर्गत होने का परिणाम है। इसी कारण राष्ट्र और 'राज्य' शब्द पर्यायवाची हो जाते हैं।

'राष्ट्र' शब्द की परिभाषा सदैव बदलती रहती है। किन्तु भिन्न व्यक्तियों ने उसकी व्याख्या भिन्न-भिन्न प्रकार से की

जैसा कि हम पहले कह चुके हैं आज तक कोई भी परिभाषा सर्वसम्मत नहीं हुई। कुछ लोगों का तो यह विचार है कि जो व्यक्ति समुदाय अपने को एक राष्ट्र समझने लगे वही एक राष्ट्र हो जाता है। इसका तो यह अर्थ हो जाता है कि किसी राज्य की स्थिति सुरक्षित नही। कोई भी सम्प्रदाय अपने में स्वतंत्रत राष्ट्रीयता की भावना जागृत कर अलग राज्य की माँग पेश कर सकता है। अतः यह परिभाषा मान्य नहीं। 'राष्ट्रीयता' के लिये क्या बातें आवश्यक हैं, इस प्रश्न का उत्तर देते हुए बर्नाडशा कहते हैं, 'उनमें जातीय ऐक्य होता है, उनका एक इतिहास तथा उनकी एक परम्परा होती है, उनकी भौगोलिक स्थिति होती है, शासन सत्ता होती है। सब से अधिक प्रधान भिन्न भापा होती है। किन्तु संसार का कोई राष्ट्र इन लक्षणों को शत प्रतिशत घटाने का प्रयत्न नहीं कर सकता।' रेमसे म्योर साहब लिखते हैं कि 'यह बताना कि एक राष्ट्र क्या है, आसान नहीं है। हाल में जातीयता से उसका बहुत कम सम्बन्ध रह गया है यद्यपि जब एक राष्ट्र की स्थापना हो जाती है तो अपनी एकता तथा लक्षणों का मूल वह एक जाति विशेष में खोज निकालता है। यों तो योरुप के सब लोग बहुत सी मिली हुई जातियों की सन्तान हैं और फ्रांस और इंगलैंड ऐसे देश जहाँ कि राष्ट्रीयता की भावना सबसे अधिक दृढ़ रही है, सबसे अधिक मिश्रित हैं। स्पष्टतया किसी भूभाग विशेष पर अधिकार होना .....समान नियम विधान........ भापा की एकता और अधिक महत्त्वपूर्ण है।' इसी प्रकार से अन्य परिभापाएँ भी दी जा सकती हैं। किन्तु इन्हीं से हम यह निष्कर्ष आसानी से निकाल सकते हैं कि किसी सम्प्रदाय को एक राष्ट्र कहने के लिये निम्नलिखित

विषयों मे एकता होनी चाहिये और शेष संसार से वे इन बातों में भिन्न हों.—

(१) निवास भूमि ।
(२) जाति तथा इतिहास ।
(३) भाषा (और साहित्य) ।
(४) सभ्यता और संस्कृति ।

इसके अतिरिक्त जितनी ही बातें एक हों उतना ही अच्छा । यहाँ हम धर्म पर विशेष विचार करेंगे यद्यपि उसका राष्ट्रीयता से कोई गहरा सम्बन्ध नहीं। फ्रान्स और इङ्गलैण्ड एक से धर्म के मानने वाले होकर भी भिन्न राष्ट्र हैं और वैसे स्वयं इङ्गलैण्ड में एक से अधिक धर्मों का प्रचार है। भारत का सारा झगडा धर्म भेद पर ही आश्रित है यह दिखाना भी हमे इष्ट है।

सबसे पहले निवास भूमि का प्रश्न लीजिये। यह दूसरी बात है कि किसी स्थान पर मुसलमानों की संख्या अधिक हो और किसी स्थान पर कम। किन्तु यह प्रत्यक्ष है कि भारतीय मुसलमान सारे भारतवर्ष में ही फैले हुये हैं। बंगाल, पंजाब आदि मे उनकी संख्या अधिक अवश्य है और युक्तप्रांत आदि मे कम किन्तु इसका यह अर्थ कदापि नहीं हो सकता है कि पंजाब मुसलमानों की मातृभूमि है और युक्तप्रांत नहीं। जो मुसलमान पंजाब में उत्पन्न हुये उनकी मातृभूमि पंजाब है और जो युक्तप्रांत में उत्पन्न हुये उनकी युक्तप्रांत। युक्तप्रान्त मे वे परदेशी की भांति नहीं बल्कि इस देश के पुत्रों की भांति रहते हैं। यही बात अन्य हिन्दू बहु-संख्यक प्रांतों के विषय में कही जा सकती है।

अतः सारा भारतवर्ष ही मुसलमानों की मातृभूमि है। किसी सिद्धान्त विशेष के आधार पर किसी खास प्रांत को उनकी मातृभूमि बताना संकीर्णता का परिचय देना है। भारत की जिस पवित्र भूमि में हिन्दू उत्पन्न हुये उसी में वे, हिन्दुओं की भांति वे भी भारत की धूलि में खेल कर बड़े हुये हैं, ईश्वर ने जो सम्पत्ति भारतवर्ष को दी है उसका ही उन्होंने हिन्दुओं के साथ उपभोग किया है, उसी देश के अन्न से पल कर बड़े हुये, और लोक लीला समाप्त कर वे उसी देश की पवित्र भूमि में सदा के लिए सो जाते हैं। यदि इस देश में अकाल पड़ता है तो वे भी हिन्दुओं की भाँति भूखों मरते हैं, यदि विदेश जाते हैं तो उनका भी हिन्दुओं ही की भाँति अनादर होता है क्योंकि वे भारतीय ही समझे जाते हैं मुसलमान नहीं।

भिन्न जातीयता के कारण संसार का कोई भी राष्ट्र इस नाम का अधिकारी नहीं। जातीय मिश्रण के कारण ससार का कोई राष्ट्र मिश्रित रक्त से रहित नहीं—यह दूसरी बात है कि तानाशाह लोग उभाड़ने के लिए शुद्ध जातीयता के सिद्धान्तों का प्रतिपादन करें। भारतीय मुसलमानों के विषय में यह विशेष रूप से सत्य है। (जैसा कि प्रो० कीथ ने भी कहा है) भारतीय मुसलमानों का ५।६ भाग हिन्दू से मुसलमान धर्म में दीक्षित हुआ है। भारत में मुसलमान जो कि व्यापारी अथवा आक्रमणकारी के रूप में आए उनकी संख्या बहुत सीमित थी। वे यहाँ पर बस गए और उन्होंने यहीं व्याह शादी की तथा यहाँ के लाखो हिन्दुओं को मुसलमान बनाया। इस प्रकार आजकल के अधिकतर मुसलमानों के पूर्व पुरुष हिन्दू थे। मुसलमानो के अनेक बड़े बड़े नाताओं के पूर्व पुरुष तीन चार पीढ़ी पहले हिन्दू थे। सर मुहम्मद इकबाल जो कि पाकि-

स्तान तथा इस्लाम के कवि कहे गए हैं, काश्मीरी ब्राह्मणो के वंश में से थे। स्वयं मि० जिन्ना के बारे में बतलाया जाता है कि उनके पूर्वज भाटिया हिन्दू थे। अनेक हिन्दू जातियो ने सम्मिलित रूप से मुसलमान धर्म स्वीकार कर लिया। मुसलमानों में राजपूत गूजर आदि उसी भाँति से मिलते हैं जिस प्रकार से कि हिन्दुओं में। यह सब जानते हुए भी मुसलमानो के लिए भिन्न-जातीयता का दावा करना भ्रामक असत्य है। इन दोनों जातियों का इतिहास एक ही है। यह दूसरी बात है कि आजकल के कुछ मुसलमान अपने को सीधा अरब से आया हुआ समझे—उसी प्रकार जैसे कि कुछ ईसाई अपने को अंग्रेज मानकर भारत के शासक बनते हैं। आजकल के उनके पूर्वज हिन्दू थे जिन्हें मसलमान आक्रमणकारियो के समक्ष मात खानी पड़ी। कारणवश या मजबूरन उन्होंने आक्रमणकारियों का धर्म भी स्वीकार कर लिया जब कि उनके अन्य भाई अपने पुराने धर्म में रहे। इतने पर ही यदि वे अपने बाप-दादों को तैमूर की सेना में ढूँढे तो उन्हें कौन रोक सकता है?

भाषा और साहित्य की दृष्टि से भी मुसलमानों को शेष भारत से अलग करने का प्रयास किया गया है। इस सम्बन्ध में पहला प्रश्न तो यह है कि मुसलमानों की भाषा है क्या। अरबी उनके धार्मिक ग्रन्थ की भाषा है उसी प्रकार जिस प्रकार कि वेद की वैदिक संस्कृत। किन्तु कितने मुसलमान ऐसे हैं जो अरबी बोल या समझ सकते हैं। यही बात बहुत कुछ फारसी के विषय में लागू होती है। हाँ आजकल उर्दू मुसलमानों की भाषा कही जाती है। हिन्दू मुसलमानों की कहकर इसका विरोध करते हैं और मुसलमान इसे अपनी कहकर

इसका समर्थन करते है। वास्तव में उर्दू सारे भारतवर्ष के मुसलमानों की भाषा नहीं है। एक बंगाली मुसलमान बंगला को, सिंधी सिंधी को, पंजाबी पंजाबी को, महाराष्ट्र का मराठी को अधिक समझता है और प्रायः उसी का प्रयोग करता है। बल्कि इन प्रान्तों के अधिकतर मुसलमान उर्दू जानते ही नहीं। और उनकी अपनी भाषाओं का शब्द कोष उर्दू की अपेक्षा हिन्दी से अधिक मिलता है। युक्तप्रान्त में भी जहाँ कि उर्दू का अधिक प्रचार समझा जाता है उर्दू जानने वालों की अपेक्षा न जानने वाले मुसलमानों की संख्या कहीं अधिक है। यहाँ पर अधिकतर मुसलमान भी हिन्दुओं की भाँति ब्रज, अवधी व हिन्दुस्तानी का प्रयोग करते हैं। उर्दू अपने मूलरूप में वास्तव में देहली के आसपास की परम्परागत भाषा है जिसमें कि फारसी अरबी शब्द मिलाकर उसे हिन्दू और नवागत मुस्लिमो के विचार विनिमय का साधन बनाया गया। मुसलमान तथा हिन्दू दोनों ही परस्पर इस भाषा का प्रयोग करते रहे हैं। किन्तु आज की साम्प्रदायिकता ने ही हिन्दी उर्दू की समस्या को खड़ा किया है। एक ओर तो हिन्दुस्तानी में से अरबी फारसी शब्द निकाल कर हिन्दी की रचना हुई दूसरी ओर संस्कृत शब्दो का वाहिष्कार किया गया, अरबी फारसी शब्दों की भरमार की गई और उर्दू को जन्म दिया गया। वास्तव में दोनो के बीच की हिन्दुस्तानी ही देहली मेरठ के आस पास के हिन्दू-मुसलमान की समान भाषा है, अन्य स्थानों में जैसा कि हम पहले कह आए हैं अनेक विभाषाएँ बोली जाती हैं। न उर्दू न हिन्दी। इस प्रकार दोनो की भाषाओं में वास्तविकता की दृष्टि से कोई अन्तर नहीं।

साहित्य की दृष्टि से भी उर्दू का साहित्य मुस्लिम और हिन्दी का हिन्दू कहा जाता है। और यह बात कुछ सीमा तक ठीक भी है किन्तु यह भेद इतना नहीं कि यह एक राष्ट्रीयता में बाधक बने। न जाने कितने मुसलमान कवियों ने हिन्दी साहित्य की वृद्धि में सहायता पहुँचाई है। जायसी, रसखान, रहीम ऐसे मुसलमान हिन्दी के प्रथम श्रेणी के कवियों में गिने जाते हैं। रामायण की दोहा चौपाई की पद्धति तो मुसलमानों द्वारा प्रवर्तित की कही जाती है। इसी प्रकार हिन्दुओं ने उर्दू साहित्य की वृद्धि की। अनेक हिन्दू तथा मुसलमान ऐसे हये हैं जिन्होने हिन्दू और उर्दू दोनों में ही साहित्यरचना की है। इसके अतिरिक्त अन्य प्रान्तीय भाषाओं के साहित्य की वृद्धि में भी दोनों धर्म वालो का बराबर मान रहा है। प्रारम्भ मे बंगाल साहित्य की वृद्धि का बहुत कुछ श्रेय मुसलमानों को ही है।

सभ्यता और संस्कृति की दृष्टि से भी भारत के मुसलमान हिन्दू एक दूसरे से अधिक भिन्न नहीं हैं। भारतीय ग्रामो की अपरिवर्त्तनशीलता वास्तव में इतिहासकारो के लिये एक आश्चर्य की वस्तु रही है। साम्राज्य के उपरान्त साम्राज्य उठे और गिर गये किन्तु भारतीय ग्राम अपनी पुरानी गति से चलते रहे। ग्रामीण हिन्दू मुसलमान बन अवश्य गये किन्तु इसके अतिरिक्त उनमें कोई अधिक भेद न आया। उनकी वेषभूषा, बोलचाल, रहन सहन प्रायः एक से ही रहे उदाहरणार्थ युक्तप्रान्त की मुसलमान स्त्रियों मे अब भी पैजामे की अपेक्षा धोती का ही प्रचार अधिक है। वास्तव में संस्कृति मनुष्य के वातावरण का फल है। जैसी उसकी परिस्थिति होती है, जैसा वातावरण उसके चारों ओर होता है वैसा ही

संस्कृति विकसित होती है। हिन्दुओं और मुसलमानों के वातावरण में कोई महान् भेद नहीं रहा है। इसीलिये उनमें कोई विशेष भेद नहीं आया। हाँ धर्म भेद के कारण जो भेद आना स्वाभाविक था वह आया। फिर जैसा कि प्रसिद्ध अंग्रेजी लेखक मेथ्यूआर्नल्ड ने लिखा है, संस्कृति मनुष्य मनुष्य में भेद डालने वाली वस्तु नहीं है। वह भ्रातृत्व सहानुभूति, सहनशीलता, परदुःखकातरता आदि भावनाओं का विकास कर मनुष्य को वास्तव में मनुष्य बनाती है। वह मनुष्य मात्र को एक मनुष्यता के सूत्र में बाँधती है। संस्कृति का लक्ष्य है मनुष्य का सर्वाङ्गीण विकास करना। अतः मानव जीवन के किसी भी एक पक्ष को वह अधिक महत्त्व नहीं देने देती। धर्म दास्यता ईर्षा द्वेष आदि ऐसी वस्तुएँ हैं जिनसे संस्कृति का नित्य विरोध है। धर्म के नाम पर खून बहाना सांस्कृतिक दृष्टि से श्लाघनीय नहीं। संक्षेप में संस्कृति मनुष्य को उसके पूर्ण विकास के लिए उन सभी बातों की ओर अग्रसर करती है जो श्लाघनीय हैं और वह उन सभी बातो का निषेध करती है जो निन्दनीय हैं। वह मनुष्यता का विकास करके मनुष्य को मनुष्य के साथ रहना सिखाती है। फिर एक सम्प्रदाय की संस्कृति दूसरे सम्प्रदाय की संस्कृति से भिन्न हो यह प्रश्न ही कहाँ उठता है। यदि कोई संस्कृति मनुष्य को मनुष्य का विरोध सिखाती है तो वह पाशविकता है संस्कृति नहीं।

जिन्ना साहब के ऊपर उद्धृत वाक्य में मुसलनानों की कलाओं का भी अलग होना वताया गया है। अब सोचने की बात यह है कि मुसलमान लोग अपनी सेनाओं के साथ कलाकारों का जमघट तो लाये ही न होंगे। जो कुछ थोड़े से

आगत मुस्लिम कलाकार थे उन्हीं की सहायता से भारतीय मुसलमानों ने अपनी कला का विकास किया होगा। ऐसी परिस्थिति में उस कला को मुस्लिम न कह कर भारतीय ही कहना अधिक ठीक होगा। केवल मुस्लिम प्रभाव के कारण अथवा मुसलमानों द्वारा अपनाये जाने के कारण कला-मुस्लिम नहीं कही जा सकती है। वास्तुकला का उदाहरण लेकर हम अपनी वात स्पष्ट कर सकते है। श्री हावेल—जो कि हिन्दू नहीं हैं—अपनी कला-सम्बधी प्रसिद्ध पुस्तक में लिखते है 'ताजमहल और बीजापुर के वड़े स्मारको के निर्माण की प्रेरणा कहाॅ से मिली यह जानने के लिये हमें भारतीय-कला का अध्ययन करना पड़ेगा, न कि अरबी फारसी अथवा योरोपीय कला का, और जितने कि सेन्टपाल गिर्जाघर और वेस्टमिन्स्टर एबी अंग्रेजी हैं उससे अधिक वह भारतीय हैं। भारत में आने वाले अरव, तारतर, मङ्गोल तथा फारस वालों को हिन्दू सभ्यता से वहुत कुछ सीखना था और भारतीय कला की महत्ता उस पर आश्रित है जो कि उन्होने सीखा न कि जो उन्होंने सिखाया। ताजमहल भारतवर्ष का है इस्लाम का नहीं . वास्तु कला की दृष्टि से ताज अद्वितीय है किन्तु न वह अरव वालों का न फारस वालों अथवा मुगलों का क्योंकि उसका शरीर और उसकी आत्मा भारतीय है।' मस्जिदों तक का निर्माण भारतीय कला के आधार पर हुआ है हाॅ उसमे आवश्यक परिवर्त्तन कर लिया गया है।

रीति रिवाजों की दृष्टि से भी दोनों में काफी आदान प्रदान हुआ। एक ओर तो इस्लाम धर्म स्वीकार करने वाले हिन्दुओं ने अपनी पुरानी रीतियाॅ वनाए रक्खी और दूसरी ओर नवागतों की कुछ रीतियाॅ हिन्दुओं ने अपना ली। अव

भी ऐसे अनेक मुसलमान वंश मिलेंगे जिनमें विबाह में पण्डित भी जाते हैं। मुस्लिम विवाह की रीतियाँ अरब वालों की अपेक्षा हिन्दुओं से अधिक मिलती है (निकाह को छोड़ कर)। भारतीय मुसलमानों में हिन्दुओं की देखा-देखी ऐसी अनेक प्रथायें प्रचलित हो गई हैं जो कि फारस अरब के मुसलमानों में देखने को भी न मिलेंगी। हिन्दुओं ने भी मुसलमानों का पर्दा अपनाया और उनकी देखा-देखी 'पीर' जिन्न आदि की उपासना शुरू की।

अब धर्म के विषय को लीजिए। हिन्दू मुसलमानों में यदि कोई भेद लक्षित होता है तो उसका कारण धर्म ही है। एक बंगाली मुसलमान और एक बंगाली हिन्दू में, यदि हम धर्म के भेद का ध्यान छोड़ दें, तो, उतना भेद नहीं है जितना कि एक सीमाप्रान्त के मुसलमान में और बंगाल के मुसलमान में है। पाकिस्तान के एक समर्थक अलहमज़ा साहब अपनी पुस्तक 'पाकिस्तान एक राष्ट्र' में लिखते है कि एक मुसलमान के लिए धर्म 'जीवन निर्वाह के नियमों का संग्रह है जो कि यह बतलाता है कि जन्म से मृत्यु तक उसे क्या क्या करना और मानना है। स्वास्थ्य-रक्षा के नियमों से लगाकर व्याह-शादी और तलाक के कानून तथा राज्य के लिए कर्त्तव्य तक—व्यक्ति के लिए पूर्णमार्ग प्रदर्शन इस्लाम की शिक्षा में मिलता है। चाहे जो उसकी जाति हो और चाहे जैसा उसका वातावरण हो एक मुसलमान अपने धर्म के अपरिवर्त्तनशील आदेशों का।पालन करता है। इस क्षेत्र मे इस्लाम संसार में एकता फैलाने वालों का सबसे बड़ा साधन रहा है। सारे संसार में करोड़ों मुसलमान दिन में पंच बार नमाज़ पढ़ते हैं। उनके विश्वास का सार रूप

कलमा में निहित है, जो कि मनुष्य की वाणी में सबमें अधिक दोहराया जाता है। वे प्रतिवर्ष तीस दिन सूर्योदय से सूर्यास्त तक उपवास करते हैं और उन्हीं त्योहारों को मानते हैं। उनकी पार्थिव सम्पत्ति में से १।४० भाग दान में दिया जाना चाहिए। प्रत्येक मुसलमान को अपने जीवन में एक बार सारे संसार के अपने सहधर्मियों के उस सम्मेलन में शामिल होना पड़ता है जहाँ कि सारी जातियो तथा सारे देशो के लोग अपने बनाने वाले के सामने जाकर प्रार्थना करते हैं। जो लोग इस प्रकार इकत्रित होते हैं उनमें भारतीय. चीनी, नीग्रो, योरोपीय, लाखों की सम्पत्ति के स्वामी और भीख माँग कर मक्का पहुँचने वाले सभी सम्मिलित होते हैं किन्तु एक बार काबे मे वे सब बराबर होते हैं, सब हाजी है' इत्यादि।

क्या यही सर्वांग-पूर्णता ईसाई धर्म में नहीं है? क्या यही सर्वांग-पूर्णता बौद्ध धर्म में नहीं है जिसमें पानी पीने और हाथ धोने तक का विधान है, क्या यही सर्वांगपूर्णता वैदिक धर्म में नहीं है जहाँ स्वास्थ्य रक्षा के साथ औषधियों का वर्णन तथा प्राकृतिक चिकित्सा तक धार्मिक ग्रन्थो की परिधि में है। धर्म शब्द ही इस बात का द्योतक है कि वह सर्वांगपूर्ण है। खैर, इससे भी पाकिस्तान के विरुद्ध बात सिद्ध होती है। जहाँ तक ईश्वर और ईश्वर के पैगम्बरों का प्रश्न है मुसलमान लोग यह कहकर कि मजहब मे अक्ल का दखल नहीं है शेष संसार से भिन्न रह सकते हैं। किन्तु क्या भारत के मुसलमानों की स्वास्थरक्षा के लिए और नियमों की आवश्यकता है, हिन्दुओं के लिए और ईसाइयों के लिए और। यह नियम वैज्ञानिक हैं और चाहे कोई किसी

धर्म का अनुयायी क्यों न हो, यह समान रूप से लागू होंगे। यदि स्वास्थ्य सम्बन्धी धर्म सम्मत नियम ग़लत हैं तो विज्ञान के इस युग में भी धर्म कहकर उसे मानना मूर्खता से भिन्न नहीं। किन्तु यदि नियम ठीक और सही हैं तो भिन्न धर्मावलम्बी वास्तव में एक हैं और यह नियम भिन्नत्व के नहीं एकत्व के प्रतिपादक हैं।

जहाँ तक नियमों की अपरिवर्त्तनशीलता का सम्बन्ध है, क्या यह कहा जा सकता है कि मुसलमानों के विवाह संवंधी नियमों में कभी परिवर्त्तन नहीं हुआ। क्या हाल में ही वैवाहिक सम्बन्धी विच्छेद तथा वक्फ़ सम्बन्धी नियमों में परिवर्त्तन नहीं हुआ है। यदि विवाह सम्बन्धी नियम धर्म के अंग हैं, जैसा कि कहा गया है, तो धर्म की अपरिवर्त्तनशीलता का दावा झूठा है और यदि धर्म को अपरिवर्त्तनशील माना जाता है तो यह परिवर्त्तन धर्म विरुद्ध हैं, और प्रत्येक मुसल्मान का धर्म है कि उन्हें अस्वीकार करे। कितने मुसलमान ऐसे हैं जिन्होंने ऐसा धर्मपालन किया है। मेरा कहने का मतलब यह है कि विशेष भाग को छोड़ कर, धर्म का जहाँ तक सम्बन्ध है वह परिवर्त्तनशील है और उसकी अपरिवर्त्तनशीलता के दावे आधार पर औरों से भेद को स्थायी बताना ठीक नहीं।

फिर मुसलमान धर्म के एकत्व पर भी बड़ा ज़ोर दिया गया है। तो क्या शिया मुसलमानों के व्याह-शादी सम्बन्ध-विच्छेद दहेज के नियम सुन्नियों से भिन्न नहीं हैं। क्या सुन्नी ही हनफी मलिकी आदि सम्प्रदायों में विभाजित नहीं हैं? क्या यह सब विभाग एक ही नियमों में विश्वास रखते हैं।

यद्यपि मौलिक सिद्धान्त में सारे मुसलमान एक हैं, बरावर हैं तथापि उनमे परस्पर भेद भी काफी है। यदि शिया-सुन्नियों मे इतना भेद न होता तो लखनऊ में धर्म का नाम लेकर इतना ऊधम क्यों मचता !

यही नहीं, जब एक धर्म होने के नाते चीन और नीग्रो में व भारतीय मुसलमानो मे एकता मानी जाती है तो क्या इससे यह सिद्ध नहीं होता कि इसलाम, धर्म, देश, राष्ट्रभाषा, रहन सहन, आदि सबसे परे की वस्तु है। न चीनी मुसलमान अरबी बोलते हैं न नीग्रो फारसी। दूर क्यों जाइए, तुर्किस्तान ने अरबी शब्दो का नितान्त बाहिष्कार कर एक अनुपम उदाहरण पेश किया है। जिन अरबी शब्दों को मिला कर खडी बोली हिन्दी उर्दू बनती है, जिन शब्दो के प्रयोग के बिना भारत का इसलाम खतरे में पड़ जाता है, उन्हीं अरबी शब्दों को वहाँ के निवासियों ने चुन-चुन कर निकाल दिया है। फिर उर्दू हिन्दी की समस्या को लेकर, उर्दू का इसलाम से सम्बन्ध जोड़ कर साम्प्रदायिकता क्यों फैलाई जाती है। (स्थान नहीं है नहीं तो ऐसी ही कुछ बात हिन्दी वालों से कही जा सकती थीं)। संक्षेप में हम कह सकते हैं कि इधर-उधर की बातो का धर्म से सम्बन्ध जोड़ कर धर्म के आधार पर ही मुसलमानो को अलग राष्ट्र मानना युक्ति युक्त नहीं। धर्म प्रेमियों को चाहिए कि धर्म की झूठी रक्षा के लोभ में देश का अहित न करे।

———

आत्म-निर्णय

कुछ लोगों के अनुसार आत्म-निर्णय मुसलमानों का जन्म-सिद्ध अधिकार है। यदि इस अधिकार को धर्मसिद्ध कहा गया होता तो बात कुछ मानने योग्य हो सकती थी। किन्तु इसे जन्मसिद्ध अधिकार कहना जन्मसिद्ध अधिकारों का अपमान करना है। ध्यान देने की बात यह है कि यह अधिकार मुसलमानों को ही दिया गया है; अन्य किसी बहु-संख्यक या अल्प संख्यक जाति को नहीं। अतः जब यह अधिकार मुसलमान होने के नाते ही मिलता है तो वास्तव में यह धर्म सिद्ध ही अधिकार है। कोई भी मनुष्य अभी मुसलमान होकर अभी इसे प्राप्त कर सकता है। तब यह जन्मसिद्ध अधिकार कहाँ रहा।

और यदि जन्मसिद्ध अधिकार ही कहा जाता है तो यह सब मनुष्यों को समान रूप से प्राप्त होना चाहिए। जन्मसिद्ध अधिकार का अर्थ यही है कि मनुष्य-योनि में जन्म लेने के नाते ही वह सब व्यक्तियों को प्राप्त है। जब अनेक व्यक्तियों को एक ही अधिकार प्राप्त है तो इसका अर्थ है कि उनके अधिकार परस्पर एक दूसरे के अधिकारों की सीमा का निर्धारण करेंगे। मुसलमान आत्म-निर्णय के नाम पर ऐसा कोई निश्चय कार्यान्वित नहीं कर सकते जो कि अन्य भारतीय

जातियों के आत्म-निर्णय में बाधा डाले। यदि मुसलमान यह निर्णय करते हैं कि पंजाब शेष भारतवर्ष से अलग हो जाय तो उनको मुसलमान होने के नाते ही यह पूर्ण अधिकार प्राप्त नहीं हो सकता। सिक्ख भी पंजाब में रहते हैं। वे निर्णय करते हैं कि पंजाब शेप भारत से अलग न हो। अब पाकिस्तान के समर्थक किस सिद्धांत के आधार पर यह चाहते हैं कि सिक्खों की बात न मानी जाय और उनकी बात मान ली जाय। यदि मुसलमानो को आत्म-निर्णय का अधिकार प्राप्त है तो सिक्खों को भी प्राप्त है। यदि यह कहा जाय कि सिक्खों की संख्या थोड़ी है तो मुसलमानों की संख्या भी हिंदुओं के समक्ष थोडी है। फिर जब मुस्लिम लीग यह दावा करती है कि अलग राष्ट्र होने के नाते मुस्लिमानों को हिन्दुओं के बराबर अधिकार मिलना चाहिये तो सिक्खों को भी मिश्रराष्ट्र होने के नाते मुसलमानों के बराबर अधिकार मिलना चाहिये।

इसके अतिरिक्त जब यह माँग की जाती है कि भारत का एक भाग विशेप उदाहरणार्थ पंजाब अन्य भागों से अलहदा कर दिया जाय तो 'यह मुसलमानों की अपेक्षा, जो वहाँ पर पर्याप्त संख्या मे हैं, सिक्खों से अधिक सम्बन्ध रखता है क्योंकि उनका तो सर्वस्व पंजाब ही है। शेप भारत से तो उनका कोई खास सम्बन्ध नहीं। उनको भी यह अधिकार होना चाहिये कि वे यह निर्णय करें कि पजाब में शेप भारत के साथ रहेंगे या अलग। फिर, जब लीग को यह विश्वास है कि अल्प संख्यकों की सलाह से ऐसे संरक्षण बन सकेंगे कि उनकी पूर्ण हितरक्षा हो सके तो क्यों नहीं वह अभी से वे संरक्षण निश्चित करके उनको पाकिस्तान के

पक्ष में कर लेती है। बङ्गाल और पंजाब के निवासियों का बहुमत विरोध करे फिर भी लीग के कहने से वे भारत से अलग कर दिये जाएँ इससे बढ़ कर अन्याय उन प्रान्तों के निवासियों के साथ हो क्या सकता है।

एक बार फिर हम इस बात पर जोर देते हैं कि अधिकार का उपभोग अन्य व्यक्तियों के वैसे ही अधिकार को ध्यान में रख कर किया जाता है। यदि आप अपने अधिकार का उपभोग इस प्रकार से करते हैं कि वह अन्य व्यक्तियों के अधिकार के उपभोग में बाधा डालता है तो वह अधिकार का उपभोग एक अनधिकार-पूर्ण चेष्टा है। शरीर आपका है। आपको उस पर पूर्ण अधिकार है किन्तु इससे ही आपको आत्म-हत्या की स्वतंत्रता नहीं मिल जाती है। मकान आपका है, आप उसमें चाहे आग लगा दें किन्तु यदि इससे पड़ोसी का मकान जल गया तो आप जुम्मेवार होंगे। यह कह कर कि हमने तो 'अपने' मकान में आग लगाई थी आप दंड से बच नहीं सकते। वास्तव में मनुष्य समाज का एक प्राणी है। उसके अधिकार कर्त्तव्य समाज की आवश्यकताओं तथा परिस्थितियों पर निर्भर हैं। आप अपने पड़ोसी को दुःख पहुँचा कर सुख से नही रह सकते। राष्ट्र भी इस महान् विश्व के सदस्य हैं। उनको भी आज यह अधिकार प्राप्त नहीं कि वे चाहें सो करें। महायुद्ध ने इस बात का अनुभव करा दिया है कि यह आत्म-निर्णय का अधिकार कितना भयानक है और इसके कारण कितना रक्तपात तथा भीषण विनाश संसार में हुआ है, इस कटु-अनुभव से शिक्षा लेकर संसार की जातियाँ अपने-अपने आत्म-निर्णय के अधिकार को सीमित कर रही हैं। अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन में यह बात निश्चित हो

चुकी है कि कोई भी राष्ट्र उसी समय तक स्वेच्छानुकूल चल सकता है जब तक कि वह अन्य राष्ट्रों का विरोध उत्पन्न नहीं करता। यदि कुछ विरोध उत्पन्न होता है तो यह अन्तर्राष्ट्रीय स स्था विश्व के हित में आदेश दे सकेगी और यह आदेश मान्य होंगे। यदि कोई राष्ट्र सीधे से नहीं मानता है तो उससे वलात् मनवाया जायगा। ऐसे समय में लीग की मांगें वेसुरी नहीं तो क्या हैं।

आत्म-निर्णय के सिद्धांत के प्रतिपादक अमेरिका के भूतपूर्व सभापति विल्सन साहब ने जो इसकी व्याख्या की है उसके अनुसार विभाजन के लिए किसी जाति विशेष की राय ही काफी नहीं है। इसके लिये सभी सम्बन्धित जातियों की सहमति की आवश्यकता है। स्वयं उन्होंने इस अधिकार की सीमाएँ भी बाँधी थी और इस सिद्धांत को कार्यान्वित करने के लिये चार शर्तें रक्खी थीं :—

(१) माल असवाव के समान नागरिक एक सार्वभौम राज्य से दूसरे सार्वभौम राज्य में अदले-वदले में भेजे नहीं जा सकते।

(२) देश की सारी जनता के हित का ध्यान रखना चाहिये।

(३) तथा विरोध उत्पन्न नहीं होना चाहिये और पुराना विरोध शान्त हो जाना चाहिये।

(४) यह सिद्धान्त उस समय भी लागू नहीं होगा जब कि एकता सुरक्षा अथवा आर्थिक हित को हानि पहुँचने की सम्भावना है।

पाकिस्तान के समर्थक इन बातो को ध्यान में रख कर जरा ठंडे दिल से विचार करे।

———

पाकिस्तान द्वारा पाकिस्तान का विरोध

पाकिस्तान की आवश्यकता हिन्दू मुस्लिम समस्या को हल करने के लिए बताई जाती है। किन्तु क्या इससे हिन्दू-मुस्लिम समस्या हल हो जायगी। वास्तव में उन प्रांतों में जहाँ पर कि मुसलमान बहु-संख्या में हैं उनके अधिकारों की रक्षा का कोई खास प्रश्न ही नहीं उठता। जब कि भारतीय संघ का एक विधान बना लिया जाता है जिसके कि परिवर्त्तन के लिए अमरीका के विधान की भाँति विशेष नियम रहेंगे, विशेषकर मुस्लिम बहुमत वाले प्रान्तों से सम्बन्ध रखने वाले नियमों में बिना इन प्रान्तों की अनुमति के कोई परिवर्त्तन न किया जा सके और सब प्रान्तों को कनैडा की भाँति निश्चित सीमाओं के अन्दर अपनी सुविधानुसार अपने विधान को परिवर्तित करने का अधिकार हो, तो कोई परिस्थिति ऐसी नहीं हो सकती जिसमें हिन्दू मुसलमानों के ऊपर अनुचित प्रभाव डाल सकें- विशेषकर उन प्रान्तों में जहाँ कि मुस्लिम बहुमत है। किन्तु अलग अलग राज्य कायम करने पर अनेक नई नई समस्याएँ पैदा हो जायँगी।

सबसे पहले तो हिन्दुस्तान और पाकिस्तान में मुसलमानों और हिन्दुओं के स्वत्वों की रक्षा का प्रश्न है। लाहौर प्रस्ताव के अनुसार 'इन इकाइयों और प्रदेशों में रहने वाले अल्प

संख्यकों के धार्मिक, सांस्कृतिक, आर्थिक, राजनैतिक, शासन-सम्बन्धी तथा अन्य अधिकारों एव हितों की रक्षा के लिए उनसे सलाह करके पर्याप्त कारगर और आदेशात्मक संरक्षणों के विधान में निश्चित रूप से व्यवस्था की जायगी। इसी प्रकार हिन्दुस्तान के अन्य भागों में जहाँ मुसलमान अल्प संख्या मे हैं उनके तथा अन्य अल्प सख्यकों के, धार्मिक, सांस्कृतिक, आर्थिक, राजनैतिक, शासन-सम्बन्धी तथा अन्य अधिकारों एवं हितो की रक्षा के लिए उनसे सलाह करके, पर्याप्त, कारगर और आदेशात्मक संरक्षणों की विधान में योजना की जायगी।'

अल्प-संख्यकों की सलाह कहाँ तक मानी जायगी ? यदि उनकी सलाह बहुसंख्यको को मान्य न हुई तो क्या होगा ? यह पर्याप्त संरक्षण क्या और कैसे होंगे ? वे कारगर किस प्रकार से होंगे और वे आदेशात्मक कैसे हो सकते हैं ? उनके पालन न किए जाने पर कौनसी शक्ति राज्य को पालन करने के लिए बाध्य करेगी ?

पाकिस्तान के अलग कायम होने के अर्थ ही हैं एक मुस्लिम राज्य कायम होना। विभाजन के नेताओ के वक्तव्यों को और समय समय पर प्रकट किए गए उद्‌गारों को देखते हुए यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि पाकिस्तान इस्लाम मतानुयायियों की ही नहीं अपितु धर्मान्ध मुसलमानो की भी क्रीड़ाभूमि बनेगा। इसी में उनकी अदम्य महत्वाकांक्षाएँ विकसित होंगी और उनकी पूर्ति के लिए सब प्रकार के प्रयत्न किए जायँगे। अन्य मतावलम्बियों के विचारो को उनमें कितना आदर होगा यह प्रश्न करना ही बेकार है। पाकिस्तान की देखा देखी हिन्दु-

स्तान के हिन्दू भी बहुमत में होने के कारण मनमानी करेंगे। कांग्रेस की उदार तथा निष्पक्ष नीति उस समय उनकी उच्छृं-खलता में लगाम लगा सकेगी इसमें सन्देह है। पाकिस्तान के हिन्दू हिन्दुस्तान की ओर रक्षा के लिए देखेंगे और हिन्दु-स्तान के मुसलमान पाकिस्तान की ओर त्राण की आशा से दृष्टि पसारेंगे। ऐसी परिस्थिति में दोनों देश शान्तिपूर्वक रह सकेंगे यह सन्देहास्पद ही नहीं असंभव होगा और गान्धीजी की गृहयुद्ध की भविष्यवाणी सही होती दिखाई देगी।

बहुसख्यकों की दृष्टि में जा संरक्षण पर्याप्त होंगे अल्प-संख्यकों की दृष्टि में वे निस्सार प्रतीत हो सकते हैं। एक बार सहमत होकर भी अल्प-संख्यक बाद में विरोध कर सकते हैं जैसा कि स्वयं लीग करती रही है। यदि किसी प्रकार दोनों पक्षों में समझौता हो भी गया तो उन संरक्षणों को कारगर करना न करना बहुसंख्यकों की मर्जी पर होगा। उन्हें आदेशात्मक कहना बुद्धि का दिवालियापन घोषित करना है। आदेश एक बड़े द्वारा छोटे को दिया जा सकता है। सार्वभौम पाकिस्तान के ऊपर कौन सी शक्ति होगी जो इन संरक्षणों का आदेश देगी। यदि विभाजन के पहले तय करने की बात कही गई होती तब तो वह समझौते के रूप में होने के कारण मान्य भी हो सकती थी किन्तु एक राज्य के व्यक्तियो का परस्पर किया हुआ समझौता आदे-शात्मक कैसे हो सकता है, फिर लिखित रूप में होते हुए भी संभव है वे कार्यरूप में परिणत न हों। इस प्रकार के देश के अन्दर के मामले अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय के विषय भी नहीं बन सकते। यह तो बहुसंख्यकों की मर्जी की बात होगी, चाहे जो स्वीकार कर लें और चाहें जब अस्वीकार कर दें। ऐसी

परिस्थिति में सिवा इसके कि विरोध और बढ़े और पाकिस्तान और हिन्दुस्तान में युद्ध हो कोई और रास्ता दिखाई नहीं देता ।'

फिर लीग के सिद्धान्त के अनुसार हिन्दू और मुसलमान दो भिन्न राष्ट्र हैं । यह दोनों जब पाकिस्तान में साथ-साथ रह सकते हैं तो वर्त्तमान हिन्दुस्तान में क्यों नहीं रह सकते । यदि पाकिस्तान मे ग़ैर मुस्लिम अल्प-संख्यकों के हितों की रक्षा के लिए समझौता हो सकता है और उनके हितो की रक्षा हो सकती है, तथा शेष हिन्दुस्तान में भी हिन्दू मुस्लिम मेल से रह सकते हैं तो फिर भारतवर्ष के हिन्दुओं और मुसलमानों में भी अल्प-संख्यक हितरक्षा का समझौता हो सकता है और मुसलमानो तथा अन्य अल्प-संख्यको के स्वत्वों की रक्षा हो सकती है । क्यों नहीं जिन्ना साहब उन संरक्षणों को अभी से निश्चित कर लेते हैं जैसा कि श्री राधाकुमुद मुकर्जी ने कहा है, 'हिन्दू नेता उन सब संरक्षणों को भारतवर्ष के लिए मान लेंगे । यदि पाकिस्तान बनने के बाद हिन्दुस्तान के मुसलमानो से वहाँ के रहने वाले हिन्दुओ से समझौता हो सकता है तो क्यो नहीं सारे भारतवर्ष के हिन्दुओं से उनका समझौता नहीं हो सकता है । जिन संरक्षणों से कि वे समझते हैं कि उनकी हितरक्षा उस समय हो सकेगी जब कि मुसलमानों की हिन्दुस्तान में प्रतिशत संख्या बहुत कम हो जायगी वही संरक्षण वे अभी से निश्चित कर भारतवर्ष के लिए लागू कर ले । यदि फिर भी यह कहा जाता है कि भारतवर्ष में मुसलमानों के हितों की रक्षा नहीं हो सकती और उस समय के हिन्दुस्तान में हो जायगी तो यह कोरा वितण्डावाद है ।'

फिर, जब यह मान लिया जाता है कि हिन्दू और मुसलमान दोनों प्रधान राष्ट्र हैं अतः दोनों को आत्म-निर्णय का अधिकार है तो पाकिस्तान बन जाने पर भी वह अधिकार बना रहेगा। पाकिस्तान और हिन्दुस्तान दो भिन्न-भिन्न राज्य बन जाने पर दोनों में हिन्दू और मुसलमान दोनों रहेंगे। दोनों में वे अलग-अलग राष्ट्र होने का दावा फिर भी करेंगे और उनका आत्म-निर्णय का अधिकार फिर भी रहेगा। उस समय फिर वही समस्या उपस्थित हो सकती है जो आज हमारे सामने है। पाकिस्तान में रहने वाले हिन्दू भी अलग राष्ट्र होने के नाते आत्म-निर्णय का दावा कर सकते हैं। इधर हिन्दुस्तान के मुसलमान फिर भी अलग राष्ट्र रहेंगे ही। हम आने वाली पीढ़ी को अभी से नहीं बाँध सकते। अतः उस समय उनकी माँगें क्या रूप धारण करेंगे यह हम अभी से नहीं कह सकते क्योंकि यह आवश्यक नहीं है कि आत्म-निर्णय में पाकिस्तान के ढंग की ही माँग पेश हो।

यह दो राष्ट्र का सिद्धान्त मान लेने पर एक अन्य विषम परिस्थिति उत्पन्न हो जायगी। जिन्ना साहब की बनाई हुई राष्ट्र की परिभाषा मान लेने पर, सिक्ख, ऐङ्गलो-इण्डियन और भारतीय ईसाई भी अलग राष्ट्र होने की मांग पेश कर सकते हैं। डा० अम्बेड्कर दलितवर्ग के एक अलग राष्ट्र होने की घोषणा कर ही चुके हैं। द्राविड़िस्तान की माँग भी पेश की जा चुकी है। सिक्खिस्तान की भी धीमी-धीमी आवाज कभी-कभी कान में पड़ ही जाती है। ऐसी परिस्थिति में भारत के कितने टुकड़े और फिर उन टुकड़ों के कितने टुकड़े करने पड़ेंगे यह नहीं कहा जा सकता। जिन्ना साहब को लिखे हुए

अपने २२ सितम्बर के पत्र में गांधी जी ने ऐसी ही परिस्थिति की ओर संकेत किया है; 'ऐसे प्रस्ताव को स्वीकार करने के परिणाम बहुत ही भयानक होंगे। एक बार इस सिद्धान्त के स्वीकार कर लिए जाने पर भारत को अनेक भागों में विभाजित करने के दावों का कोई अन्त नहीं रह जायगा और जिसका अर्थ भारत का विनाश होगा।'

स्वयं जिन्ना साहब हिन्दू और मुसलमानों को दो प्रधान राष्ट्र मानते हैं। इसका अर्थ है कि भारत में अन्य भी राष्ट्र हैं। जब हैं तो इनको आत्म-निर्णय का अधिकार क्यों नहीं होगा। यदि यह कहा जाय कि इनकी संख्या बहुत कम है तो बात ठीक नहीं बैठती। इनकी कम संख्या होने के कारण उनके हितों की रक्षा करना और भी अधिक दुष्कर तथा आवश्यक हो जाता है। लीग के आत्म-निर्णय की मांग मे इन अन्य राष्ट्रो की मांगों के लिए कोई गुंजाइश नहीं रक्खी गई है और इनको विस्मरण कर देने के कारण यदि इनकी अल्प संख्या बताई जाय तो वह इनके प्रति अन्याय का स्पष्ट प्रमाण होगी और इनके आत्मनिर्णय के अधिकार की और भी अधिक समर्थन होगा। लीग इस सिद्धान्त को मानकर कि अप्रधान राष्ट्रों को आत्मनिर्णय का अधिकार नहीं है पाकिस्तान की मांग पेश नहीं कर सकती। हितरक्षा के प्रश्न मे अल्प-संख्यकों की महत्ता उनके अल्प संख्यक होने के कारण ही है। निष्कर्ष यह है कि पाकिस्तान स्वीकार कर लेने से अल्पसंख्यकों की समस्या सुलझने के स्थान पर और अधिक उलझ जाती है। पाकिस्तान में और पाकिस्तान बन कर पाकिस्तान का विरोध करेंगे।

निष्कर्ष

(१) भारत के हिन्दू और मुसलमान अलग-अलग राष्ट्र नहीं हैं। राष्ट्रीयता की दृष्टि से जितना भेद एक प्रान्त के हिन्दुओं और मुसलमानों में है उससे अधिक भेद भिन्न-भिन्न प्रांतों के मुसलमानों में है।

(२) लीग भारत के मुसलमानों की एक मात्र प्रतिनिधि व अधिकार पूर्ण संस्था नहीं है और न कांग्रेस तथा राष्ट्रीय मुसलमानों के अलग रहते हो सकती है।

(३) पाकिस्तान की माँग मुसलमानों के एक वर्ग मात्र की माँग है।

(४) आत्म-निर्णय का जो अधिकार मुसलमानों का कहा जाता है वह प्रत्येक भारतीय को प्राप्त है। किन्तु किसी का भी आत्म-निर्णय का अधिकार असीमित नहीं हो सकता है।

(५) कोई भी प्रान्त बिना उसके निवासियों की स्पष्ट तथा घोषित इच्छा के भारत से अलग नहीं किया जा सकता।

(६) विभाजन के प्रश्न पर मतदान के लिये प्रत्येक ज़िला एक अलग इकाई समझा जायगा।

(७) पाकिस्तान मान लेने से भारत की समस्याएँ और बढ जायँगी।

(८) धर्म का इतर वस्तुओं से सम्बन्ध जोड़ कर पारस्परिक विद्वेष फैलाने की प्रवृति अश्लाघनीय है।

—:*:—

परिशिष्ट अ

राजा जी की योजना

अखिल भारतीय राष्ट्रीय कॉंग्रेस और अखिल भारतीय मुस्लिम लीग के बीच समझौते की आधारभूत शर्तें जिन पर कि गान्धी जी और श्री जिन्ना सहमत हैं और जिनको दोनों क्रमश: कॉंग्रेस और मुस्लिम लीग से स्वीकार कराने का प्रयत्न करेंगे :—

(१) स्वाधीन भारत के विधान के बारे में निम्नलिखित शर्तों के आधार पर मुस्लिम लीग भारतीय स्वतंत्रता की मांग का समर्थन करती है और परिवर्तन काल के लिए एक अस्थाई सरकार बनाने में वह कांग्रेस से सहयोग करेगी।

(२) युद्ध की समाप्ति के बाद उत्तर पश्चिमी और पूर्वी भारत के उन जिलों की हदबन्दी करने के लिए जिनमें कि मुसलमानो का स्पष्ट बहुमत है, एक कमीशन नियुक्त किया जायगा। हदबन्दी द्वारा बनने वाले इलाकों में रहने वाले समस्त वयस्क लोगों का व्यस्क मताधिकार या किसी और व्यवहारिक मताधिकार के आधार पर लिया जाने वाला जनमत ही अन्त में हिन्दुस्तान से पृथक होने का प्रश्न तय करेगा। यदि बहुमत द्वारा हिन्दुस्तान से पृथक एक स्वा-

धीन राज्य बनाने के पक्ष में फ़ैसला हो गया तो उस फ़ैसले पर अमल किया जाय गा और सीमान्त के ज़िले दोनों में से किसी राज्य में शामिल हो सकेंगे।

(३) जनमत लेने के पूर्व सब पार्टियाँ जनता के सामने अपना अपना दृष्टिकोण रख सकेंगी।

(४) बटवारे की दशा में रक्षा, व्यवसाय तथा यातायात और अन्य आवश्यक उद्देशों के संरक्षण के लिए आपस में समझौता कर लिया जायगा।

(५) जनसंख्या का परिवर्त्तन स्वेच्छा-पूर्वक ही हो सकेगा।

(६) यह शर्तें उस समय लागू होंगी जब ब्रिटेन हिन्दुस्तान के शासन की सम्पूर्ण सत्ता और जिम्मेदारी भारतीयों को सौंप देगा।

जगत नारायण लाल का प्रस्ताव जिसे अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी ने मई, १९४२ में इलाहाबाद में स्वीकृत किया था—

अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी की राय है कि भारत के विभाजन का कोई भी प्रस्ताव जिसके अनुसार किसी अंगभूत राज्य या प्रादेशिक इकाई को भारतीय संघ से पृथक होने की स्वतंत्रता मिलती हो, विभिन्न प्रान्तों एवं राज्यों और कुल मिला कर सारे देश के अधिवासियों के सर्वोत्तम हितों के विरुद्ध होगा, इस लिए कांग्रेस ऐसे किसी प्रस्ताव से सहमत नहीं हो सकती।

प्रान्तों के अलग रहने के बारेमें कांग्रेस कार्य-समिति का प्रस्ताव

पहले से ही किसी प्रान्त के अलग होने के सिद्धान्त को मान लेना भारतीय एकता की कल्पना पर जबर्दस्त प्रहार करना होगा। इसके फल-स्वरूप देशी राज्यों के भारतीय संघ में शामिल होने के मार्ग में कठिनाइयाँ और बढ़ जायँगी। कांग्रेस भारत की एकता और स्वतन्त्रता में विश्वास करती आई है और विशेष कर इस समय जब को आधुनिक दुनियाँ के लोग अधिकाधिक बड़े संघ कायम करने की दिशा में अनिवार्य रूप से सोच रहे हैं देश की एकता में बाधा पैदा होना सभी सम्बन्धित पक्षों के लिए हानिकारक होगा और उसकी कल्पना भी अत्यन्त दुःखदाई है। फिर भी कमेटी किसी प्रादेशिक इकाई के लोगों को उनकी घोषित और स्थापित इच्छा के विरुद्ध भारतीय संघ में रहने के लिए मजबूर करने की बात नहीं सोच सकती। इस सिद्धान्त को मानते हुए कमेटी अनुभव करती है कि ऐसे हालात पैदा करने की हरेक कोशिश की जानी चाहिए जो विभिन्न इकाइयों को समान और सहयोगी राष्ट्रीय जीवन का विकास करने में सहायता पहुँचावें। इस सिद्धान्त की स्वीकृति का अनिवार्य रूप से यह अर्थ होता, है कि ऐसे कोई परिवर्त्तन न किये जायँ जिनके फल स्वरूप नई समस्याएँ खड़ी हों और उस क्षेत्र में अन्य महत्त्व-पूर्ण दलों पर दबाव डाला जाय।

लीग का सन् १६४० का लाहौर प्रस्ताव

'भौगोलिक दृष्टि से पास पड़ने वाली इकाइयों की ऐसी हदबन्दी हो कि आवश्यक प्रादेशिक हेर-फेर के बाद जहाँ मुस-

लमान बहुसंख्या में हों, जैसा कि भारत के उत्तर पश्चिमी और पूर्वी भागों में है, वहाँ उन्हें मिला कर स्वाधीन राज्यों की स्थापना की जाय, जिनमें शामिल होने वाली इकाइयाँ स्वशासन-भोगी और सार्व-भौम होंगी इत्यादि'।

क्रिप्स प्रस्ताव का विभाजन-सम्बन्धी अंश

ब्रिटिश सरकार आश्वासन देती है कि इस प्रकार जो विधान बनाया जायगा, उसको वह मान लेगी, और तुरन्त कार्यान्वित करेगी। शर्त सिर्फ़ यह होगी कि ब्रिटिश भारत का कोई प्रान्त जो नए विधान को मानने के लिए तैयार न हो, और अपनी मौजूदा वैधानिक स्थिति को कायम रखना चाहे, उसे ऐसा करने का अधिकार होगा। किन्तु इसकी गुंजाइश होनी चाहिए कि बाद में वह चाहे तो नए विधान के साथ सम्बद्ध हो सकता है।

ये अलग रहने वाले प्रान्त यदि चाहेंगे तो ब्रिटिश सरकार उनके लिए भी नया विधान मानने को तैयार होगी, जो भारतीय संघ की भाँति उन्हें पूर्ण दर्जा देगा और जो यहाँ निर्धारित समान तरीके से बनाया जायगा।

———

परिशिष्ट ब

जन-संख्या सम्बन्धी अक—१९४१ की जन-गणना के अनुसार—

मुस्लिम वहुमत वाले प्रदेश :—

	कुल आवादी (लाखों में)	कुल तादाद मुसलमानों की	मुस्लिम प्रतिशत
वगाल	६०३·०६	३३०·०५	५४·७३
पंजाव	२८४ १९	१६२·१७	५७·०७
सीमाप्रान्त	३०·३८	२७·८९	९१ ७९
सिन्ध	४५·३५	३२·०८	७०·७५
वलूचिस्तान	५ ०२	४·३९	८७·५०
पन्थ पिप लोदा	·०५	·०३	६०·००
मुस्लिम अल्प-संख्या वाले प्रदेश :—			
मद्रास	४९३ ४२	३८ ८६	७·९०
वम्वई	२०८ ५०	१९·२०	९·२१
संयुक्त प्रान्त	५५०·२०	८४·१६	१५·३०
विहार	३६३·४०	४७·१६	१२·९८
मध्य प्रांत-वरार	१६८·१३	७·८४	४·६६
आसाम	१०२·०५	३४·४२	३३·७३
उड़ीसा	८७·२८	१·४६	१·६८
अजमेर-मेरवाड़ा	५·८४	·९०	१५·४०
अडमान नीकोवार	·३४	·०८	२३·७०
कुर्ग	१·६९	·१५	६·७३
दिल्ली	९·१८	३·०५	३३·२२

	ब्रिटिश भारत	देशी राज्य
हिन्दू	१६०,८१०,६५३	६४,११६,५५३
मुसलमान	७६,३६८,५०३	१२,६५६,५६३

रियासतों में बलूचिस्तान में मुसलमानों की संख्या ९७.५ प्रतिशत काशमीर में ७७.७ प्रतिशत तथा सीमाप्रांत की एजेन्सियों में ५० प्रतिशत है। अन्य रियासतों में मुसलमान बहुसंख्या में नहीं हैं। रियासत हैदराबाद में मुसलमानों की संख्या १०.४ प्रतिशत है।

मुस्लिम बहुमत वाले प्रांतों में पंजाब और बंगाल के कई डिवीजनों में हिन्दू बहुमत में हैं :—

पंजाब में—

अम्बाला डिवीज़न—इसमें हिसार, रोहतक, गुरगाॅव, करनाल, अम्बाला और शिमला जिले सम्मिलित हैं।

जनसंख्या ४६,६५,६४२ क्षेत्रफल १४७५० व० मील

हिन्दू ३०,६६,४८३

मुसलमान १३,१८,१३६

जलन्धर डिवीज़न—इसमें काँगड़ा, होशियारपुर, जलन्धर, लुधियाना और फीरोज़पुर के जिले शामिल हैं।

जनसंख्या ५४,३८,५३१ क्षेत्रफल १८६६२ व०मील

हिन्दू १६,५०,८०२

मुसलमान १८,७७,७४२

वर्द्वान डिवीज़न—इसमें वर्द्वान, वीरभूमि, बांकुरा, मिदनापुर, हुगली और हावड़ा जिले शामिल हैं।
जनसंख्या १,०२,८७,३६६ क्षेत्रफल १४१३५ व०मील
हिन्दू ८१,२५,१८५
मुसलमान १४,२६,५४०

प्रेसीडेन्सी डिवीज़न—इसमे १४ परगना, कलकत्ता, नदिया मुर्शिदाबाद, जैसोर और खुलना के जिले शामिल हैं।
जन संख्या १,२८,१७,०८७ क्षेत्रफल १६,४०२ वर्गमील
हिन्दू ६८,८३,२१७
मुसलमान ५७,११,३५४

सीमाप्रान्त, वलूचिस्तान और सिन्ध में हर जिले में मुस्लिम वहुमत है। पंजाब, बंगाल, और आसाम की जिलेवार आवादी नीचे दी जाती है :—

पंजाब

ज़िले	कुल आवादी (लाखों में)	कुल आवादी के प्रतिशत		
		हिन्दू	मुसलमान	सिक्ख
हिसार	१०.०६	६४ ८५	२८ ३३	६.०३
रोहतक	०६.५६	८१ ६०	१७ २२	००.१५
गुडगांव	०८ ५१	७१ ४२	३२ ४६	००.७०

करनाल	०६·६४	६६.६३	३० ५६	०२ ००
अम्बाला	०८ ४७	४८.४१	३१ ६४	१८ ४४
शिमला	००·३८	७६ ३८	०४,७३	०२ ६७
जालन्धर	११ २७	२७ ५७	४५.१७	२६ ४४
लुधियाना	०८ १८	२०.२३	३६ ६२	४१.६६
फीरोजपुर	१४·२३	१६ ६२	४५.०८	३३ ७८
कांगड़ा	०८ ६६	६२.२३	५.०६	·५७
होशियारपुर	११·७०	४०.००	३६.६४	१६.६२
लाहौर	१६ ६५	१६.८१	६०.६६	१८.२६
अमृतसर	१४·१३	१५.३५	४६.५०	३६.१४
गुरदासपुर	११·५३	२४.५५	५०.२३	१६·१८
सियालकोट	११ ६०	१६ ४१	६२·१०	११·७०
गुजरानवाला	०६·१२	११·८४	७०·३६	१०·८७
शेखू पुरा	०८·५२	०६·११	६३·६२	१८·८५
गुजरात	११·०४	०७·६१	८५·६०	०६·३५
झेलम	०६·२६	६·४८	८६·५१	०३·१२
रावलपिंडी	०७·८५	१०·५०	८०·००	०८·१६
अटक	०६·७५	६·३६	६०·५२	०२·६७
शाहपुर	०६·६८	१०·०२	८३·८७	०४·८१
मियावाली	०५·०३	१२·२३	८६·१७	०१·३७
मिंटगुमरी	१३·२६	१४·३६	६६·०७	१३·६१
लायलपुर	१३·६६	११·६१	६२·८२	१८·८१
झंग	०८·२१	१५·७१	८२·५८	०१·४६
मुल्तान	१४.८४	१६.३१	७७,६८	७४.१५
मुजफ्फरगढ़	०७ १२	१२.६६	८३.५२	००,८३
डेरागाजीखाँ	०५.८१	१०.८६	८८.[illegible]	[illegible]

बलूचि अंतर्सीमांत	००'४०	००८०	६६२०	......
कुलयोग	२८४००	२८००	५७००	१३००

बंगाल

जिले	कुल आबादी (लाखों में)	कुल आबादी के प्रतिशत हिन्दू	मुसलमान
वर्दवान	१८६०	८१'४४	१८'५६
वीरभूमि	१०'५	७३ ३१	२६'६६
बांकुरा	१२ ६	६५ ४१	०४'५६
मिदनापुर	३१ २	६२'४१	०७'५६
हुगली	१३'८	८३'८३	१६'१७
हावड़ा	१४'५	७८'७३	२१'२७
२४परगना	३५'३	६६'३५	३३'६५
कलकत्ता	२१'१	७४'००	२६'००
नदिया	१७'६	३८'३३	६१'६७
मुर्शिदाबाद	१६'४	४४'४४	५५'५६
जैसोर	१८'३	३८'८४	६१'१६
खुलना	१६'४	५१'५०	४६'५०
राजशाही	१५ ७	२४'२१	७५'७६
दिनाजपुर	१६ ३	४६ ४३	५० ५१
जलपाइगुड़ी	१० ६	७६ ०१	२३ ६६
दार्जिलिग	०३ ८	६७ ३७	०२'६३
रङ्गपुर	२८ ८	२६'२१	७० ७६
बोगरा	१२ ६	१६'६४	८३ ३८
पवना	१७ १	२३ १०	७६ ६०
मालदा	१२'३	४५'७२	५४'२८

ढाका	४२·२	३३·१९	६६·८१
मैमनसिंह	६०·२	२३·४४	७६·५६
फरीदपुर	२८·९	३६·२०	६३·८०
बाकरगञ्ज	३५·५	२९·३७	७१·६३
टिपेरा	३८६	२४·२२	७५·७८
नोआखाली	२२·२	२१·५४	७८·४६
चटगाँव	२१·५	२६·२०	७३·८०
चटगाँवका पहाड़ीइलाका	२·५	९६·५०	०३·५०
कुल योग	६०३·०	४१·५४	५४·७३

आसाम

जिले	कुल आबादी (लाखों में)	कुल आबादीके प्रतिशत हिन्दू	मुसलमान
कचार	०६·५	६१·४९	३८·५१
सिलहट	३१·२	३९·२९	६०·७१
खासी और जैना की पहाड़ियाँ	०१·२	९८·६९	०१·३१
नागा पहाड़ियाँ	०१·९	९९·७२	००·२८
लुशाई पहाड़ियाँ	०१·५	९९·९३	००·०७
गोल पारा	१०·१	५३·७७	४६·२३
कामरूप	१२·६	७१·००	२९·००
दारंग	०७·४	८३·५८	१६·४२
नौगाँव	०७·१	६४·८१	३५·१९
शिवसागर	१०·७	९५·१८	०४·८२
लखीमपुर	०८·९	९५·०२	०४·९८

गारो पहाड़ियाँ	०२.२	६५.३५	०४.६५
सादिया सीमान्त इलाका	००.६	६८.५६	०१.४४
वालीपारा सीमांतइलाका	००.०६	६६.०६	००.६४
कुल योग	१०२.००	६६.२८	३३.७२

नोट—हिन्दुओं में गैर मुस्लिम भारतीय जातियाँ भी सम्मिलित हैं।

माधो प्रिंटिंग वर्क्स, इलाहाबाद।